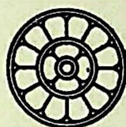


श्रीमाताजीकी

बातचीत

भाग २





श्रीमाताजीकी

बातचीत

भाग २

अदिति कार्यालय
पांडिचेरी--२
१९६७

अदिति पुस्तक-माला — पुष्प ९ फरवरी १९६७

अनुवादक: चंद्रदीप

प्रकाशक — अदिति कार्यालय, पांडिचेरी-२
मुद्रक — श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-२
द्वितीय संस्करण १९६६

Hindi — Sri Mataji Ki Batchit — Part II
(THE MOTHER'S TALKS) (*Translated by Chandradip*)
Published by — Aditi Karyalaya, Pondicherry-2
Printed at — Sri Aurobindo Ashram Press, Pondicherry-2

True spirituality is not to renounce life, but to make life perfect with a Divine Perfection

14.12.62

सच्ची आध्यात्मिकता जीवनका त्याग करना नहीं है बल्कि भागवत परिपूर्णताके द्वारा जीवनको पूर्ण बनाना है।

१४-१२-६२

—श्रीमां

"श्रीमाताजीकी बातचीत — भाग १" को हमारे पाठक देख ही चुके हैं। अब यह दूसरा भाग भी उनके सम्मुख हम रख रहे हैं। यों तो श्रीमांकी यह वाणी सभी लोगोंके लिये उपयोगी है, पर यह भाग विशेष रूपसे युवक विद्यार्थियोंके लिये बहुत अधिक लाभदायी हो सकता है — ऐसा हमारा विश्वास है।

— अनुवादक

सुखी होना जीवनका लक्ष्य नहीं है। साधारण जीवनका लक्ष्य है अपने कर्तव्यको पूरा करना; आध्यात्मिक जीवनका लक्ष्य है भगवान्को प्राप्त करना।

*

सच्चा मनोभाव न तो संन्यासी बनना है और न कामनामें लिप्त होना।

*

सदा अपनी चेतनाके शिखरपर बने रहो और जो कुछ तुम्हारे साथ घटित होगा वह सदा ही सबसे उत्तम होगा।

*

अपने-आपको बदल दो और परिस्थितियां भी बदल जायंगी।

*

बाहरी इंद्रियानुभूतियोंमें उतना मत निवास करो, हृदयकी गहराईमें हट आओ; शाश्वतताकी शांति वहां विद्यमान है और वह तुम्हें सहायता देगी।

*

जितनी बड़ी कठिनाई आती है उतनी ही बड़ी विजय भी आती है। बस, सहन करो और तुम अवश्य विजयी होगे।

*

प्रयास और संघर्षके बिना जीवनमें कुछ भी नहीं प्राप्त होता।

*

ज्ञान मनमेंसे नहीं आता; वह आता है अंतरात्माकी गहराइयोंमें-से अथवा उच्चतर चेतनासे।

*

जो नयी ज्योति पृथ्वीपर उदित हुई है उसकी ओर अपने-आपको खोल दो और एक ज्योतिपूर्ण पथ तुम्हारे सामने प्रसारित हो जायगा।

—श्रीमां

विषय-सूची

श्रीमाताजीकी बातचीत, भाग २

(१)

श्रीमाताजीकी बातचीत

भाग २

१

योगसाधनाका चुनाव

श्रीअरविंद-योगकी साधना करनेका अर्थ है अपने-आपको सर्वांगीण रूपमें रूपांतरित करनेकी चेष्टा करना, अपने जीवनमें बस इसी एक उद्देश्यको सामने रखना: बस, एकमात्र वही, और कोई चीज नहीं। तुम यह अपने अंदर अनुभव करते हो कि तुम इसे चाहते हो या नहीं। यदि तुम नहीं चाहते तो तुम सदिच्छा, सेवा, समझदारीका जीवन ले सकते हो; तुम अन्यान्य अनेक प्रकारसे कार्य कर सकते हो। परंतु उसके और योग करनेके बीच बहुत बड़ा अंतर है।

योग करनेके लिये तुम्हें ज्ञानपूर्वक इसकी इच्छा करनी होगी, तुम्हें सबसे पहले यह जानना होगा कि यह क्या है,—जानो कि यह क्या है और तब संकल्प करो। और जब एक बार तुमने संकल्प कर लिया तब तुम फिर न हिचकिचाओ। जब तुम इसे ग्रहण करते हो तब तुम्हें यह अच्छी तरह जानकर ही इसे लेना चाहिये कि तुम क्या कर रहे हो। जब तुम यह कहते हो कि "मैं योग करना चाहता हूं", तब तुम्हें जानना चाहिये कि तुम किस बातका निर्णय कर रहे हो। यही कारण है कि जब मैंने तुमसे इसकी चर्चा की थी तब मैंने इस चीजके इस स्वरूपपर बहुत अधिक जोर नहीं दिया था। मैंने निश्चय ही इस चीज (योग) के विषयमें बातचीत की है और संभवतः काफी मात्रामें भी की है—मैं यहां बोलनेके लिये हूं और तुम सुननेके लिये; परंतु मेरा मतलब यह है कि साधारण रूपमें मैंने जो कुछ भी कहा हो, जब कोई व्यक्तिगत रूपसे मेरे

पास आता है और कहता है कि मैं योग करना चाहता हूं तभी मैं 'हां' (या, यदि आवश्यक हो तो 'ना') कहती हूं। ऐसे व्यक्तियोंके लिये बातें अलग हो जाती हैं, जीवनकी अवस्थाएं, विशेषकर आंतरिक चीजें और अवस्थाएं भिन्न प्रकारकी हो जाती हैं।

यहां सर्वदा ही एक चेतना विद्यमान रहती है और वह तुम्हारी स्थितिको सुधारनेके लिये कार्य करती रहती है; निरंतर वह तुम्हें उन बाधाओंके सम्मुख उपस्थित करती रहती है जो तुम्हें उन्नति करनेसे रोकती हैं, वह तुम्हारे सिरको तुम्हारी ही भूलों और अंधताओंसे टकरा देती है। परंतु यह बात केवल उन्हीं लोगोंके विषयमें घटित होती है जिन्होंने योग करनेका निश्चय किया है। दूसरोंके लिये वह चेतना प्रगति करानेवाली एक ज्योति, एक ज्ञान, एक शक्तिके रूपमें काम करती है जिसमें कि तुम अपनी अधिक-से-अधिक क्षमताओंको आयत्त कर सको, तुम अधिक-से-अधिक अनुकूल वातावरणमें, जहांतक संभव हो वहांतक, अपने-आपको विकसित कर सको, परंतु वह तुमको चुनाव करनेके लिये पूर्णरूपेण स्वतंत्र छोड़ देती है।

तुम्हारा निर्णय तुम्हारे अंतरसे आना चाहिये। जो लोग ज्ञानपूर्वक योग करनेके लिये आते हैं और यह जानते हैं कि योग क्या है, उन सभी लोगोंको जीवनकी कुछ ऐसी अवस्थाओंको स्वीकार करना पड़ता है जो अन्य लोगोंके जीवनकी अवस्थाओंसे एकदम भिन्न होती हैं — बाहरमें संभवतः दोनोंके बीच कोई भेद न भी हो पर भीतरमें एक चौड़ी खाई होती है। उस शक्तिमें एक प्रकारकी स्वेच्छाचारिताका भाव है जो योगपथसे तनिक भी हटने नहीं देता; भूलोंको करते ही वे तुरत ऐसे परिणामोंके साथ दिखायी देने लगती हैं कि फिर कोई अपनेको धोखा नहीं दे सकता और सारी बातें ही बड़ा गंभीर रूप धारण कर लेती हैं।

तुम सभी, मेरे बच्चो, मैं तुम्हें बता दूं — मैं बहुत बार तुमसे कह चकी हूं और फिर दुहराती हूं कि — तुम एक असाधारण स्वतंत्रताके अंदर निवास कर रहे हो। बाहरमें कुछ थोड़ेसे प्रति-

बंध लगाये गये हैं, क्योंकि, हम चूंकि बहुतसे लोग हैं और सारी पृथ्वी हमारे अधिकारमें नहीं है इसलिये, कुछ हदतक हमें किसी अनुशासनके अधीन अपने-आपको रखना ही पड़ता है जिसमें कि अत्यधिक अव्यवस्था न आ जाय; परंतु आंतरिक रूपमें तुम एक अद्‌भुत स्वाधीनताके अंदर निवास करते हो, कोई सामाजिक बंधन नहीं, कोई नैतिक प्रतिबंध नहीं, कोई बौद्धिक संयम नहीं, कोई बंधा-बंधाया सिद्धांत नहीं, कोई चीज नहीं है, है बस, एकमात्र एक ज्योति। अगर तुम इससे लाभ उठाना चाहो तो तुम लाभ पाओगे; अगर तुम न चाहो तो तुम इससे लाभ न उठानेके लिये स्वतंत्र हो।

परंतु जिस दिन तुम चुनाव कर लेते हो, और जब तुम उसे पूरी सच्चाईके साथ करते हो और तुम अपने अंदर एक यथार्थ निर्णयको अनुभव करते हो तब बातें, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, एकदम भिन्न हो जाती हैं। बस, हमारे सामने है प्रकाश और अनुसरण करनेके लिये, सीधे चले जानेके लिये मौजूद है रास्ता, हमें जरा भी इधर-उधर नहीं मुड़ना चाहिये। यह पथ किसीको धोखा नहीं देता और न कोई इसे धोखा दे सकता है। तुम्हें जान रखना चाहिये कि योग महज खिलवाड़ नहीं है। जब तुम इसे चुनते हो तो तुम्हें यह जानना चाहिये कि तुमने क्या किया है। और जब तुमने अपना रास्ता चुन लिया है तब तुम्हें उसपर डटे रहना चाहिये। अब तुम्हें हिचकिचानेका अधिकार नहीं। अब तुम्हें आगे बढ़ना ही होगा। बस, इतनी ही है बात।

परंतु मैं कम-से-कम जो तुमसे आशा रखती हूं वह है सभी कार्योंको अच्छी तरह करनेकी इच्छा रखना, उन्नति करनेके लिये प्रयास करना, जीवनमें साधारण मनुष्योंसे कुछ अधिक अच्छा बननेकी कामना करना। तुम ऐसी अवस्थाओंमें लालित-पालित हुए हो, बड़े हुए हो जो असाधारण रूपसे ज्योतिपूर्ण, चैतन्ययुक्त, सामंजस्यपूर्ण और शुभेच्छासे ओतप्रोत हैं। और इसके बदलेमें यह उचित है कि तुम पृथ्वीपर कुछ अंशमें उस ज्योति, सामंजस्य

और शुभेच्छाकी अभिव्यक्ति बनो। यही तुम्हारे लिये ईमानदारीकी बात होगी।

मनुष्य योग, रूपांतरका योग — जो सभी कामोंमें अत्यंत कठिन काम है — केवल तभी कर सकता है जब कि वह अनुभव करे कि वह यहां, इस पृथ्वीपर, केवल इसीके लिये है और उसे अन्य कोई काम नहीं करना है, यही उसके अस्तित्वका एकमात्र कारण है। यदि तुम्हें कठिन परिश्रम करना पड़े, दुःख झेलना पड़े, संघर्ष करना पड़े तो भी कोई परवा नहीं : यदि तुम कहो : "बस यही और अन्य कुछ भी नहीं," — तब बात दूसरी है। अन्यथा मैं तुमसे कहती हूं : बराबर प्रसन्न रहो, सर्वदा अच्छे बने रहो; 'अच्छे बने रहो' का मतलब है, अधिकाधिक समझदार बनो, जानो कि तुम अद्‌भुत अवस्थाओंमें रहकर बड़े हो रहे हो, साधारण जीवनसे एक अधिक ऊंचा, अधिक महान् और अधिक सच्चा जीवन यापन करनेका प्रयास करो तथा इस चेतना, इस ज्योति तथा इस सदाशयताके कुछ अंशको जगत्‌में प्रकट होने दो।

*

तुम किसी व्यक्तिगत और अहंकारपूर्ण उद्देश्यसे पूर्णता प्राप्त करनेकी कोशिश नहीं करते, बल्कि भगवान्‌को अभिव्यक्त करनेके उद्देश्यसे करते हो, इसका तात्पर्य है अपना सब कुछ भगवान्‌की सेवामें लगा देना। तुम व्यक्तिगत रूपसे अपने-आपको पूर्ण बनानेकी इच्छासे, महज अपने लिये योग नहीं करते, वरन् जो भागवत कार्य करना यहां अभिप्रेत है उसके लिये, भागवत इच्छाको परिपूर्ण करनेके लिये करते हो।

जबतक तुम्हारे अंदर कोई व्यक्तिगत आकांक्षा है, कोई व्यक्तिगत कामना, कोई अहंकारपूर्ण इच्छा है, तबतक तुममें एक प्रकारका मिश्रण है, वह भागवत संकल्पकी विशुद्ध अभिव्यक्ति नहीं है। एकमात्र महत्त्वपूर्ण वस्तु है भगवान्, उनकी इच्छा, उनकी अभिव्यक्ति, उनका प्रकाश। तुम उसीके लिये हो, तुम वही हो और इससे भिन्न

अन्य कोई चीज नहीं हो। अगर तुम्हारे अंदर 'मैं' का, 'अहं' का, पृथक् व्यक्तित्वका बोध विद्यमान है तब इसका मतलब है कि तुम अभी भी वह चीज नहीं हो जो तुम्हें होना चाहिये। मैं यह नहीं कहती कि यह बात आनन-फाननमें की जा सकती है, बल्कि यह कहती हूं कि इस विषयका सत्य यही है।

क्योंकि, इस स्तरपर, आध्यात्मिक स्तरपर, बहुत अधिक लोग– सच पूछो तो जो लोग आध्यात्मिक जीवन ग्रहण करते हैं उनमेंसे प्रायः सबके सब लोग — व्यक्तिगत कारणोंसे, सब प्रकारके व्यक्तिगत कारणोंसे ही योग करते हैं : कुछ लोग जीवनसे उकता जानेके कारण, कुछ लोग दुःखी होनेके कारण, कुछ दूसरे अधिक ज्ञान पानेकी इच्छा होनेके कारण, फिर कुछ दूसरे आध्यात्मिक रूपसे महान् बननेकी कामना होनेके कारण, फिर कुछ और लोग ऐसी चीजें सीखनेकी चाह होनेके कारण योग करते हैं जिन्हें वे दूसरोंको सिखा सकें अर्थात् गुरु बननेकी आकांक्षासे योग करते हैं और इस तरह योग करनेके हजारों व्यक्तिगत कारण होते हैं। परंतु ऐसे लोग बहुत नहीं होते जो अपने-आपको भगवान्के हाथोंमें दे देनेका सीधा-सा कार्य — इसकी पूरी पवित्रता और निरवच्छिन्नताको बनाये रखकर — करें जिसमें कि भगवान् हमें अपना लें और वह अपनी मर्जीके मुताबिक हमारा व्यवहार करें। ऐसा करनेपर तुम सीधे अपने लक्ष्यपर पहुंच जाते हो और भूल करनेका खतरा कभी नहीं उठाते। परंतु अन्य सभी उद्देश्योंमें मिलावट होती है, उनपर अहंकारकी छाप होती है और वे तुम्हें इधर-उधर तथा तुम्हारे लक्ष्यसे बहुत दूर ले जा सकते हैं।

इस बोधका होना ही सबसे उत्तम मनोभाव है कि तुम्हारे अस्तित्वका एकमात्र कारण, तुम्हारा एकमात्र उद्देश्य है भगवान्के प्रति सर्वांगीण रूपसे, संपूर्ण रूपसे परिपूर्ण आत्मदान करना, इस हदतक कर देना कि तुम अपने और भगवान्के बीच विभेद करनेमें असमर्थ हो जाओ, तुम पूर्णतः, अखंडतः भगवान् ही बन जाओ और तुम दोनोंके बीच किसी भी प्रकारकी कोई व्यक्तिगत क्रिया न घुसने पाये। और

केवल यही वह मनोभाव है जिसके सहारे तुम प्रत्येक चीजसे, यहां-तक कि स्वयं अपने-आपसे भी — क्योंकि सभी खतरोंमें बड़ेसे बड़ा खतरा वह होता है जो स्वयं अपने आत्मासे, अपने अहंकारपूर्ण आत्मा-से आता है — जीवनमें सुरक्षित रहते हुए निर्विघ्न उन्नति कर सकते हो।

व्यवस्था और अनुशासन

(१)

तुम्हें अपने विषयमें सचेतन होना होगा, प्रत्येक छोटी-मोटी बात-के विषयमें सचेतन होना होगा। तुम जिसे अपना 'मैं' कहते हो उसे तुम्हें अपने चैत्य-केंद्र, अपनी सत्ताके भागवत केंद्रके इर्दगिर्द व्यव-स्थित करना होगा जिसमें कि तुम एक स्वतंत्र, सुसंवद्ध और पूर्ण सचेतन सत्ताको अधिकृत कर सको: चूंकि यह केंद्र भगवान्के प्रति पूर्ण समर्पित है इसलिये यदि सभी अंग-प्रत्यंग इसके चारों ओर सु-समंजस रूपसे व्यवस्थित हों तो वे भी भगवान्के प्रति समर्पित हो जाते हैं। इस तरह, जब भगवान्की इच्छा होती है, जब समय आ जाता है, जब व्यक्तीकरणकी क्रिया पूरी हो जाती है, तब भग-वान् तुम्हारे अहंको अपने अंदर गल जाने देते हैं जिसमें कि तुम केवल भगवान्के लिये ही अपना अस्तित्व रख सको। परंतु इसका निर्णय स्वयं भगवान् करते हैं। तुम्हें पहले आरंभिक सभी कार्योंको पूरा कर लेना चाहिये, एक ऐसी सचेतन सत्ता बन जाना चाहिये जो ऐकांतिक तथा संपूर्ण रूपसे भगवान्के चारों ओर केंद्रित हो एवं उन्हींके द्वारा परिचालित होती हो। जब तुम्हारा अहंकार तुम्हारे भीतरसे एक पूर्ण व्यक्तिको गठित कर डालनेका अपना काम पूरा कर ले, जब वह कार्य पूरे रूपमें और संपूर्ण संपन्न हो जाय, तब तुम भगवान्से कह सकते हो, "यह देखो, अब मैं तैयार हो गया हूं; क्या

तुम मुझे चाहते हो ?" भगवान् साधारणतया कहते हैं, "हां"। तब प्रत्येक चीज कार्यान्वित हो जाती है, प्रत्येक चीज संपन्न हो जाती है। तुम भगवान्के कार्यके लिये सच्चा यंत्र बन जाते हो। परंतु सबसे पहले यंत्रका निर्माण करना आवश्यक है।

तुम्हें स्कूल भेजा जाता है, तुमसे कहा जाता है कि तुम (मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकारकी) कसरतें करो; क्या तुम यह समझते हो कि यह सब तुम्हें महज तकलीफमें डालनेके लिये ही कहा जाता है ? नहीं, यह सब इसलिये कहा जाता है कि तुम्हारे लिये एक ऐसी परिस्थिति अत्यंत आवश्यक है जिसमें तुम अपने-आपको गढ़ना सीख सको। यदि तुम व्यक्तित्व-गठनके, सर्वांगपूर्ण गठनके इस कार्यको, स्वयं अपने-आप, एक कोनेमें एकदम अकेले रहकर, करनेकी कोशिश करते होते तो तुमसे तबतक कुछ भी न कहा जाता जबतक कि तुम इसे कर न लेते; परंतु यह संभव नहीं कि तुम इसे कर सको, कोई एक भी बच्चा इसे नहीं कर सकेगा, वह इसे जान भी नहीं सकेगा कि इसे कैसे किया जा सकता है अथवा कहांसे इसे आरंभ किया जाता है। अगर किसी बच्चेको यह न सिखाया जाय कि कैसे जीवन यापन किया जाता है तो वह जीवन यापन करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, वह यह सीख ही नहीं सकता कि कोई काम कैसे किया जाता है। अत्यंत आरंभिक क्रियाएं भी वह तबतक नहीं कर पाता जबतक कि उसे सिखाया नहीं जाता। अतएव किसीको यदि अपने व्यक्तित्वका गठन करनेके हेतु बिना किसी सहायताके समस्त अनुभवमेंसे गुजरना पड़े तो वह अस्तित्वमें आनेसे बहुत पहले ही मर जायगा। यही हैं युग-युगसे संचित दूसरोंके, उन लोगोंके अनुभवोंकी उपयोगिता, जिन्हें अनुभव मिला था और जो तुमसे यह कहते हैं कि "यदि तुम तेजीसे आगे बढ़ना चाहो, जिन चीजोंको सीखनेके लिये शताब्दियोंकी आवश्यकता होती थी उन्हें यदि तुम कुछ वर्षोंमें सीखना चाहो तो आओ, यह करो, वह करो, इस तरह करो, उस तरह करो, पढ़ो, अध्ययन करो, स्कूलमें, खेलके मैदानमें

जाकर अपन पाठ सीखो।" एक बार जब तुम रास्तेपर लग गये तब फिर, यदि तुम्हें प्रतिभा है तो, तुम अपनी पद्धति स्वयं ढूंढ़ सकते हो। परंतु आरंभमें तुम्हें यह जानना आवश्यक है कि तुम्हें अपने पैरोंपर कैसे खड़ा होना चाहिये, कैसे चलना चाहिये। एकदम अपने ही बलपर चलना आसान नहीं है। यही कारण है कि मनुष्यको शिक्षा-की आवश्यकता होती है।

(२)

कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जो बड़े ही अव्यवस्थित होते हैं। वे नहीं जानते कि चीजें कैसे साफ-सुथरी रखी जाती हैं। वे यह भी नहीं जानते कि चीजें कैसे रखी जाती हैं। वे या तो उन्हें खो देते हैं या नष्ट कर देते हैं। इसके कई कारण होते हैं। सबसे पहले, अधिकांश क्षेत्रोंमें इसका अर्थ यह होता है कि बच्चेमें पर्याप्त जीवनी-शक्ति नहीं है। उसका प्राण-पुरुष इतना अधिक बलवान् नहीं है कि वह बाहरी वस्तुओंकी देख-रेख कर सके। दूसरा कारण यह हो सकता है कि उसे भौतिक जीवनमें रस नहीं मिलता; उसकी रुचि मानसिक कार्यमें, कल्पना करने, स्वप्न देखने आदिमें लगे रहनेमें होती है। अथवा, इसका कारण फिर आत्मसंयम और अनुशासन-का अभाव हो सकता है।

परंतु परिणाम सब समय एक ही होता है, अर्थात् अस्तव्यस्तता। कुछ बच्चे जब कपड़ा उतारते हैं तब वे अपने कपड़ोंको दायें-बायें चाहे जहां फेंक देते हैं, अथवा, जब वे अपना पढ़ना-लिखना खतम कर चुकते हैं तब वे यह नहीं जानते कि वे अपनी पुस्तकें, कापियां, पेंसिल या दावात आदि कहां रख रहे हैं; पीछे उन सब चीजोंको खोजने और इकट्ठा करनेके लिये काफी तकलीफ उठानी पड़ती है। सच पूछो तो ये सब चीजें एक असंयत प्रकृतिकी द्योतक हैं, ऐसे स्व-भावको सूचित करती हैं जो सुश्रृंखल नहीं है; इससे पता चलता है

कि वह बच्चा केवल बाहरमें ही नहीं बल्कि भीतरमें भी अव्यवस्थित है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो संभवतः अपनेको बड़ा समझते हैं और भौतिक वस्तुओंके प्रति घृणाका भी भाव रखते हैं। परंतु श्रीअरविंदका कहना है कि जो लोग चीजोंकी देखभाल नहीं कर सकते वे उन्हें पानेके योग्य नहीं, उन्हें उन चीजोंको मांगनेका कोई अधिकार नहीं। जैसा कि मैं कहती हूं, यह एक प्रकारकी तीव्र अहंमन्यताको, बहुत अधिक अस्तव्यस्तताको सूचित करती है।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो बाह्यतः खूब स्वच्छ और सुसज्जित कमरेमें निवास करते हैं। परंतु एक आलमारीको खोलो, एक दराज-को खींचो, तुम देखोगे कि वह एक युद्धक्षेत्र है; सभी चीजें वहां एक साथ खिचड़ी हो रही हैं। उनका मस्तिष्क भी बहुत कुछ वैसा ही होता है — एक हीन छोटा-सा मस्तिष्क जहां नाना प्रकारके विचार और भावनाएं ठीक उसी अवस्थामें रहती हैं जिस अवस्थामें कि बाहरी चीजें उनकी आलमारीमें होती हैं। उन्होंने उन्हें सु-व्यवस्थित नहीं किया होता, उन्हें क्रमसे सजाकर नहीं रखा होता। तुम इसे एक अकाटच नियमके रूपमें ग्रहण कर सकते हो। मैंने कभी ऐसा आदमी नहीं देखा है जो अपनी चीजोंको बेढंगे रूपमें रखता हो और फिर भी उसका मस्तिष्क युक्ति-तर्ककी क्षमता रखता हो। उसके अंदर सब तरहके विचार बाहरी चीजोंकी तरह ही एक साथ अंड-बंड छितरे होते हैं, अत्यंत विभिन्न और विरोधी विचार एक साथ उलझे हुए होते हैं, वे एक उच्चतर समन्वयके अंदर सुव्यवस्थित और सुसमंजस नहीं होते।

अतएव किसी मनुष्यका स्वभाव समझनेके लिये तुम्हें उसके साथ बातचीत करनेमें अपना समय व्यतीत करनेकी कोई आवश्यकता नहीं; तुम बस जाकर उसका एक दराज खोलो या उसकी एक आलमारी खोलो और तुम उसका स्वभाव जान जाओगे। परंतु मैं किसी एक ऐसे व्यक्तिकी चर्चा कर सकती हूं — मैं शीघ्र ही तुम्हें बताऊंगी कि वह कौन थे — जो पुस्तकों और कागजोंके स्तूपोंके बीच रहा

करते थे। तुम उनके कमरेमें जाओ और तुम सर्वत्र उनके ढेर देखोगे। परंतु, दुर्भाग्यवशतः तुमने यदि अकस्मात् एक भी कागज-का टुकड़ा दूसरी जगह हटा दिया तो वह ठीक-ठीक पकड़ लेंगे और पूछेंगे कि किसने कागजोंको गड़वड़ किया था। चीजोंके अंबार लगे रहते थे, भीतर घुसनेपर तुम्हें कहीं रास्ता नहीं मिल सकता था। परंतु प्रत्येक चीजका अपना स्थान होता था — नोट, पत्र, पुस्तकें, सब क्रममें होते थे — और ऐसा संभव नहीं था कि तुम उन्हें इधर-उधर कर दो और वह इसे न जानें। हां, वह थे श्रीअरविंद। दूसरे शब्दोंमें, तुम्हें सुव्यवस्थाको दरिद्रता नहीं समझ लेना चाहिये। स्वभावतः ही यदि तुम्हारे पास वहुत थोड़ी चीजें हों — एक दर्जन पुस्तकें और एक सीमित संख्यामें अन्य चीजें हों — तो उन्हें उचित ढंगसे सजाकर रखन। वहुत आसान है। परंतु हमारा लक्ष्य होना चाहिये नानाविध वस्तुओंके वीच एक युक्तिसंगत क्रम, एक सचेतन कौशलपूर्ण व्यवस्था स्थापित करना। उसके लिये सुसंगठन करनेकी एक क्षमताकी आवश्यकता होती है। यह एक ऐसी क्षमता है जिसे प्रत्येक आदमीको प्राप्त करना चाहिये और रखना चाहिये, अवश्य ही यदि कोई शरीरसे ही असमर्थ न हो — जब कोई अस्वस्थ या दुर्वल या अपंग न हो और उसमें आवश्यक शक्ति ही न हो: और उस अवस्थामें भी एक सीमा है। मैं ऐसे अस्वस्थ लोगोंको जानती हूं जो तुमसे कह सकते थे, "वह दराज खोलो तो, तुम्हें दायें या बायें या नीचे एक ऐसी चीज दिखायी देगी।" वे स्वयं तो चल-फिर या चीजोंको रख नहीं सकते थे पर यह जानते थे कि वे कहां हैं। ऐसे उदाहरणोंको छोड़ भी दें तो भी हमारा आदर्श व्यवस्था, सु-संगठनका ही होना चाहिये, उदाहरणके लिये, एक लाइब्रेरीकी व्य-वस्था जैसी चीज होनी चाहिये जहां हजारों लाखों पुस्तकें होती हैं और फिर भी वे सब क्रमानुसार सजी हुई, विभिन्न भागोंमें बंटी हुई होती हैं और उनपर विवरण-पत्र भी लगे होते हैं और तुम्हें बस पुस्तकका नाम वतलाना होता है और कुछ मिनटोंमें वह पुस्तक

तुम्हारे हाथोंमें आ जाती है। निश्चय ही यह काम केवल एक आदमीका नहीं होता, फिर भी वह नमूना तो है ही जिसका एक उदाहरणके रूपमें स्मरण किया जा सकता है।

तुम्हें भी अपनी सारी चीजोंको उसी तरीकेसे सुव्यवस्थित रखना चाहिये। तुम्हें किसी दूसरी पद्धति या प्रणालीका अनुसरण करनेकी आवश्यकता नहीं। तुम्हारा एक अपना निजी नियम है जो तुम्हारे लिये सुविधाजनक और सत्य है—पर अच्छी तरह सोच-समझकर समुचित रूपसे उसकी व्यवस्था करनी चाहिये।

अपने जीवनको व्यवस्थित करो

नैतिक धारणाओंका आंतरिक सत्ताके विकासके साथ कोई संबंध नहीं। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है, पर इन दोनोंमें मेल नहीं बैठता और ये दोनों उलटे रास्ते जाते हैं। तुम एकदम स्वार्थ-हीन कार्य करनेके कारण भी पूर्ण रूपसे बीमार पड़ सकते हो और दूसरी ओर अत्यंत अहंकारपूर्ण कार्य करते हुए भी स्वस्थ और शक्ति-शाली बने रह सकते हो।

नैतिक चेतना और सत्यको अभिव्यक्त करनेवाली चेतना, इन दोनोंमें बहुत बड़ा अंतर है। मैं फिर तुमसे कहती हूं कि नैतिक चेतना प्राप्त करनेकी अपेक्षा सत्यको प्रकट करनेवाली चेतना प्राप्त करना अनंतगुना अधिक कठिन है। क्योंकि, जो कोई मोटी बुद्धि-वाला मनुष्य सामाजिक नियमोंको जानता और उनका अनुसरण करता है, उसे ही नैतिक चेतना होती है, पर सत्यकी चेतना प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको मोटी बुद्धिवाला नहीं होना चाहिये, यह पहली शर्त्त है।

जीवनमें जितनी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएं घटती हैं, वे जीवनमें संग-ठनका अभाव होनेके कारण आती हैं। जब जैसा मुहूर्त्त आता है बस उसीके अनुसार तुम जीवन विताते हो, चीजें जैसी आती हैं उन्हें वैसी ही किसी-न-किसी तरह ग्रहण कर लेते हो। अथवा, तुम

एक मानसिक व्यवस्था लानेकी चेष्टा करते हो जो सत्यके साथ बिलकुल मेल नहीं खाती और इस कारण पग-पगपर विफल होती है। यदि जीवनको एक उच्चतर तत्त्वके अनुरूप सुव्यवस्थित किया जाय, साधारणतया जीवनमें जो हमें अंधेकी भांति टटोल-टटोलकर चलना पड़ता है उससे यदि हम बचें, अर्थात्, हमें क्या करना चाहिये और कैसे करना चाहिये इस संबंधमें मिलनेवाले ठीक-ठीक सुझाव-का प्रत्येक क्षण अनुसरण करें तो फिर सारी बातें विना किसी दुर्घटना-के व्यवस्थित की जा सकती हैं।

मोटे तौरपर कहें तो, यह अधिक अच्छा है कि हम अपने कार्य-को खूब सावधानीके साथ चुनें, केवल उतना ही काम लें जितना कि हम कर सकें और उसे अच्छी तरह करें; बहुधा तुम बहुत अधिक काम ले लेते हो और उन बहुत अधिक कामोंमें ऐसी बेकार चीजोंकी एक अच्छी मात्रा होती है जो पर्याप्त अंशमें निकाली जा सकती या घटा दी जा सकती हैं और उनसे अंतिम परिणाममें कोई अंतर नहीं पड़ेगा। मैं इसे कोई पूर्ण सामान्य नियम नहीं बना रही हूं। मैं तो केवल अपना एक अनुभव बता रही हूं। अगर तुम आंतरिक सुझावके प्रति संपूर्ण सावधान रहो और बाहरसे आनेवाली लहरोंमें इधर-उधर बहते रहना अस्वीकार कर दो — दूसरे लोगोंकी उन इच्छाओं, दैनंदिन परिस्थितियों या विरोधी शक्तियोंकी क्रियाओं-को अस्वीकार कर दो जो कार्योंको होने देना नहीं चाहतीं — कहने-का मतलब, यदि तुम इधर-उधर धक्के खानेके बदले स्पष्ट रूपमें और यथायथ आंतर संकेत ग्रहण करो और उसकी उपेक्षा किये विना या हिचकिचाये विना, बल्कि एक ऐसी कठोरताके साथ भी, जो दूसरोंको नापसंद हो — हो तो हुआ करे — उसके अनुसार कार्य करो तो उस हालतमें तुम देखोगे कि तुम एक तरहसे परिस्थितियों-के स्वामी बन गये हो, वे अनुकूलताके साथ व्यवस्थित हो रही हैं और थोड़े समयमें अधिक कार्य करनेकी क्षमता तुममें आ गयी है।

किसी काममें लगनेवाले समयको कम करनेका एक तरीका है

और वह है अपनी एकाग्रताको बढ़ाना। कुछ लोग एकाग्र होनेमें असमर्थ होते हैं; एकाग्र होनेपर वे थक जाते हैं। एकाग्र होना बोझ ढोनेके समान है; परंतु तुम इसके अभ्यस्त हो सकते हो। सो, सबसे पहले तुम्हें एकाग्र होनेकी इस शक्तिको आयत्त करना होगा; उसके लिये तुम्हें अपने मनको स्थिर करना होगा और उस स्थिरताकी अवस्थामें जिस प्रश्नको तुम्हें हल करना है उसपर, जो काम तुम्हें करना है उसपर, चाहे वह कुछ भी क्यों न हो, एकाग्र होओ, एकाग्रता बनाये रखो। एकाग्रता एक प्रकारकी चालक-शक्तिके साथ आती है जो शांत पर अत्यंत शक्तिशाली होती है; और फिर तुम बिना हिचकिचाये आगेकी ओर बढ़ते जाते हो। उस समय तुम उस कार्यको एक चौथाई घंटेमें कर सकते हो जिसे करनेमें साधारणतया पूरा एक घंटा लग जाता। उससे तुम्हारा बहुत अधिक समय बच जाता है। तुम निरंतर एक कामसे दूसरे काममें लगनेके बजाय एक क्षणके लिये लेट जाओ और पूरा विश्राम लो। विश्राम करनेसे तुम्हारे उन सभी अंगोंको आराम मिल जाता है जिनपर काम करते समय बल पड़ता था, मतलब, उन्हें नयी शक्ति मिल जाती है और तुम फिर नये सिरेसे एकाग्र होना आरंभ कर सकते हो।

भगवती माताके लिये काम करना

जो कुछ भी तुम करो — पढ़ना-लिखना या खेल-कूद — उसे करते हुए तुम्हें भगवती मांको अवश्य स्मरण करना चाहिये। आखिरकार यह कोई बहुत कठिन बात नहीं है। सबसे पहले दिव्य शक्तिको ग्रहण करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये एक प्रकारकी तैयारीके रूपमें तुम इसे कर सकते हो और फिर सामुदायिक कार्यमें सहायता करनेके लिये सेवाके रूपमें। तुम इसे व्यक्तिगत लाभके लिये नहीं वरन् भागवत कार्यके हेतु अपनेको प्रस्तुत करनेके लिये कर सकते हो।

मुझे यह अनिवार्य प्रतीत होता है। यदि तुम साधारण दृष्टि-कोण बनाये रखो तो तुम सर्वदा ही अपनेको ऐसी अवस्थाओंमें पाओगे जो पूर्णतः संतोषजनक नहीं होंगी और जिन शक्तियोंको तुम ग्रहण कर सकते हो उन सबको ग्रहण करनेके लिये अनुपयुक्त होंगी।

उदाहरणार्थ, यदि तुम लंबी कूदका अभ्यास करते हो तो तुम्हें महज उसे करनेके आनंदके लिये ही उसे नहीं करना चाहिये, बल्कि इस भावनाके साथ करना चाहिये कि तुम्हारा शरीर अपनी क्रियाओं-में अधिक पूर्ण बने, भागवत शक्तिको ग्रहण करने और उन्हें अभि-व्यक्त करनेका अधिक उपयोगी यंत्र बने।

निःसंदेह तुम्हारा प्रत्येक कार्य इसी भावनाके साथ किया जाना चाहिये। अन्यथा जो सुयोग, जो अनुकूल परिस्थितियां तुम्हें दी गयी हैं उनसे तुम्हें लाभ नहीं मिलेगा।

दिव्य चेतना यहां प्रत्येक चीजमें व्याप्त हो रही है और सभी कार्योंमें अभिव्यक्त होनेकी चेष्टा कर रही है। और, यदि तुम, अपनी ओरसे, अपने-आपसे यह कहो कि जो प्रयास, जो प्रगति तुम कर रहे हो वह इस चेतनाको ग्रहण करने और अभिव्यक्त करनेके योग्य तुम्हें बनानेके लिये है तो फिर स्वभावतः ही वह कार्य अधिक अच्छे रूपमें और अधिक शीघ्रताके साथ होगा।

और यह मुझे अत्यंत प्रारंभिक बात मालूम होती है। क्योंकि, सच पूछो तो, मुझे आश्चर्य होगा यदि यह बात दूसरे प्रकारकी हो। क्योंकि एक ऐसे सुसंगठित स्थानमें तुम्हारे रहनेका कोई अर्थ ही नहीं होगा यदि वह इसके लिये न हो। फिर भला इसका क्या उपयोग हो सकता है? संसारमें असंख्य विश्व-विद्यालय और पाठ-शालाएं हैं जो हमारे विश्व-विद्यालय और पाठशालाकी अपेक्षा अधिक अच्छे रूपमें कार्यकर्त्ताओं और सामग्रियोंसे सुसज्जित हैं। अगर तुम यहां हो तो अवश्य ही इसका कोई विशेष कारण होना चाहिये। वह कारण यही है कि यहां चेतनाको आत्मसात् करने और प्रगति करनेकी संभावना मौजूद है। यदि तुम अपने-आपको ऐसी स्थितिमें

नहीं रखते जिसमें कि तुम उसे ग्रहण कर सको तो जो सुअवसर तुम्हें दिया गया है उसे तुम खो रहे हो।

भला इस विषयमें तुम्हारा क्या ख्याल है? क्या महज संयोगवश ही या बस इसीलिये कि तुम्हारे मां-बापने तुम्हें यहां रख दिया है, तुम यहां हो, तुम संभवतः इसी तरह अन्य किसी जगहमें भी रहे होते? तुम्हें स्वयं अपने-आपसे ये प्रश्न पूछने चाहियें। तेरह वर्षकी उम्रमें मनुष्य खूब अच्छी तरह प्रश्न करना आरंभ कर सकता है, विशेषकर कोई यदि ऐसी जगहमें हो जो एकदम साधारण नहीं है। भला यहां कोई क्यों रहता है, किन कारणोंसे रहता है, यहां रहनेका उद्देश्य क्या है?

यदि तुमने यह प्रश्न पूछा होता तो तुम अवश्य ही कहीं अपने अंदर घुसे होते और इसका उत्तर वहां तुमने खोजा होता। क्योंकि इसका उत्तर तुम्हारे अंदर है, बाहर कहीं नहीं है। यदि तुम काफी गहराईतक जाओ तो तुम वहां एक बहुत स्पष्ट, बहुत मजेदार उत्तर पाओगे। अगर तुम नीचे गहराईमें, एक ऐसी नीरवतामें चले जाओ जहां सभी बाहरी वस्तुएं मौन हो जाती हैं तो तुम वहां भीतरमें एक लौ देखोगे जिसकी चर्चा मैं इतनी बार किया करती हूं और इस लौके भीतर तुम अपनी भवितव्यता देखोगे। तुम वहां सदियोंकी वह अभीप्सा देखोगे जो थोड़ी-थोड़ी करके जमा हुई है जिसमें कि वह तुम्हें अनगिनत जन्मोंके द्वारा सिद्धिके महान् दिवसकी ओर ले जाय। इस तैयारीने हजारों वर्ष लिये हैं और अब यह अपनी सफलताको प्राप्त करने जा रही है।

और जब तुम उसे पानेके लिये पर्याप्त गभीरतामें पैठ जाओगे तो तुम देखोगे और अनुभव करोगे कि तुम्हारी सभी अक्षमताएं, दुर्बलताएं, वे सभी चीजें जो तुम्हारे अंदर अस्वीकार करती हैं और समझना नहीं चाहतीं, वे सब तुम्हारा 'स्व'-रूप नहीं हैं; वे सब तो महज एक जामा हैं जो कि सिर्फ एक हदतक ही तुम्हारे उपयुक्त ठहरता है और जिसे कि तुमने बस इस मौकेके लिये ही पहना है।

परंतु तुम्हें समझना ही होगा। यदि तुम अपने-आपको सचमुचमें इस सुअवसरसे लाभ उठानेके योग्य देखना चाहते हो, जो कुछ तुम करना चाहते थे, जो कुछ करनेकी अभीप्सा तुमने वहुत, वहुत अधिक प्राचीन कालमें की थी, उसे करते हुए अपनेको देखना चाहते हो तो तुम्हें धीरे-धीरे दिव्य ज्योति, दिव्य चेतना, दिव्य सत्यकी ओर मुड़ना चाहिये और उन्हें अपने बाहरी जामेके इन अंधकारपूर्ण उपादानोंमें उतार लाना चाहिये। केवल उसी समय तुम यह पूरा-पूरा समझ सकोगे कि तुम यहां क्यों हो, और केवल समझ ही नहीं सकोगे वल्कि जिस कामके लिये तुम यहां हो उसे करनेके योग्य भी बन सकोगे।

शताब्दियोंसे उस अभीप्साने तुम्हारे अंदर अपनेको तैयार किया है, स्वभावतः ही इस शरीरमें नहीं, जो कि अत्यंत नया है, वल्कि तुम्हारी सच्ची सत्तामें; शताब्दियोंसे वह इस अवसरकी प्रतीक्षा कर रही थी। तुम देखते हो कि कितना आश्चर्यजनक यह सब है! तुम देखते हो कि इन चीजोंकी आशा लोग दीर्घकालसे, अति दीर्घकालसे कर रहे थे, जिनके लिये लोगोंने इतनी अधिक प्रार्थना की थी, इतना अधिक परिश्रम किया था, वे अव अपनी चरितार्थताके समयको प्राप्त हो गयी हैं। यह वह समय है जव कि महान् चीजें संपादित हो रही हैं। हमें इस मौकेको खोना नहीं चाहिये।

संकल्प और इच्छा

कामना या इच्छा और संकल्पमें क्या भेद है?

ये एक ही चीज नहीं हैं। एक उदाहरण लें, जव तुम देखते हो कि एक काम करना है और उसे करना अच्छा है, तव साधारणतया तुम्हारी बुद्धि निश्चय करती और निर्णय देती है; और उसके बाद तुम्हारा संकल्प आरंभ करता है और करणीय कर्मके लिये जो

कुछ आवश्यक है वह तुमसे कराता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि संकल्प क्रियाशक्ति है जो, तुम्हारे द्वारा या उच्चतर शक्तिके द्वारा जो कुछ निश्चित हुआ है उसके निमित्त प्रयुक्त होनी चाहिये। यह एक ऐसी चीज है जो सुसमंजस और सुसंगठित होती है: यह एक निश्चित योजनाके अनुसार कार्य करती है और अपने-आपको पूरा वशमें रखती है। इच्छा या कामना, इसके विपरीत, एक आवेग है। ऐसे लोग होते हैं जो कामनाओंसे भरे होते हैं पर उनमें संकल्प नहीं होता; ऐसा कहा जाता है कि उनकी कामनाएं उन्हें खा जाती हैं। यदि तुममें अपनी कामनाओंको पूरा करनेका संकल्प भी न हो तो तुम कहीं नहीं पहुंचते। अधिकांश लोगोंमें जो थोड़ी-सी संकल्पशक्ति होती है वह निःसंदेह उनकी कामनाओंकी सेवामें ही लग जाती है। संकल्प एक शक्ति है जो सोचने-समझने और संगठन करनेमें समर्थ है और जिसे अपने सामने उपस्थित किसी उद्देश्यके लिये काममें लगाया जा सकता है।

जब तुममें संकल्प-शक्ति है तब इसका अर्थ होता है कि किसी सुनिश्चित लक्ष्यके लिये लगातार प्रयास करते रहनेकी क्षमता तुममें है। इसके विपरीत, कामना एक ऐसी चीज है जो तीव्र, उत्तेजना-पूर्ण और क्षणिक होती है; यह बहुत कम ही कोई स्थायी चीज होती है। स्थायी प्रयासमें जो मूल सत्त्व, सार तत्त्व और संगठन होता है वह इसमें नहीं होता। जब कामना तुम्हें अपने वशमें कर लेती है तब वह तुमसे कोई भी काम करा सकती है, पर आवेगके नशेमें ही, किसी सुव्यवस्थित और सुसंगत ढंगसे नहीं।

बच्चोंमें बराबर चीजें — मेरा मतलब है स्थूल चीजें — मांगते रहनेकी आदत क्यों होती है?

निश्चित रूपसे इस कारण कि वे कामनाओंसे भरे होते हैं। संभवतः जब वे गर्भमें आते हैं तब कामनाके स्पंदन उनके रग-रगमें पैठ जाते हैं, और, चूंकि उनमें अपने ऊपर कोई संयम नहीं होता इसलिये वे चट अपने भावोंको प्रकट कर देते हैं। वयस्क लोग

भी कामनाओंसे भरे होते हैं, पर वे इन्हें प्रकट करनेमें बहुत अधिक लजाते हैं। वे इन सब चीजोंके कारण लज्जित होते हैं, वे डरते हैं कि कहीं उनकी खिल्ली न उड़ायी जाय और इसलिये वे अपनी कामनाओंको छिपाते हैं। बच्चे अधिक भोले-भाले और सीधे-सादे होते हैं; जब वे कोई चीज चाहते हैं तब झट बोल देते हैं। वे यह नहीं सोचते कि अपने मनकी बात कह देना उचित या बुद्धिमानी नहीं है। वे उस ढंगसे विचार-वितर्क नहीं करते। निःसंदेह सभी लोग — मेरा मतलब है सामान्य कोटिके लोग — निरंतर कामनाओं-से भरा हुआ जीवन यापन करते हैं, केवल वे अपनेको प्रकट नहीं करते, कभी-कभी तो स्वयं अपने-आप भी इसे स्वीकार नहीं करते। परंतु यह कामना, चीजोंकी आवश्यकताका यह बोध उनमें बराबर ही रहता है। अपने सामने तुम एक सुन्दर वस्तु देखते हो और तुरत उसे अधिकृत करनेकी भावनाके वशमें हो जाते हो। यह लड़कपन है, यह हास्यास्पद भी है। निन्यानवे प्रतिशत लोग जिन चीजोंको चाहते हैं उन्हें वे बिलकुल नहीं पाते। और बाकी एक प्रतिशत लोगोंमेंसे कितने लोग जब एक बार वास्तवमें अपनी चाही चीज पा जाते हैं तब उसमें रुचि रखते हैं? एक बच्चा तो और भी अधिक वैसा होता है। वह जो कुछ चाहता है वह तुम उसे दे दो और एक क्षण बाद ही उसकी ओर वह ताकेगा भी नहीं।

इस आदतसे छुटकारा पानेमें बच्चोंको कैसे सहायता दी जा सकती है?

इसकी कई पद्धतियां हैं। सबसे पहले, यह जाननेकी जरूरत है कि कहीं हम बच्चेको जो कुछ वह सोचता और अनुभव करता है उसे खुले तौरपर व्यक्त करनेसे रोक न दें। लोग साधारणतया और निरंतर यही करते हैं। वे डांटते-धमकाते हैं, दंड देते हैं और बच्चा अपनी इच्छाएं छिपानेकी आदत ग्रहण कर लेता है। इससे बच्चा सुधरता नहीं। यदि तुम नित्य-निरंतर बच्चेसे कहते हो, "नहीं, तुम्हें यह चीज नहीं मिलेगी", तो इस तरह तुम महज इस

विचारको उसके अंदर बैठा देते हो कि, "हां, जब मैं बच्चा हूं तब मुझे कोई चीज नहीं दी जाती; जबतक मैं बड़ा नहीं हो जाता तब-तक मुझे प्रतीक्षा करनी होगी; अच्छा, जब मैं बड़ा हूंगा तब मैं जो कुछ चाहता हूं उसे पाऊंगा।" इसलिये मैं कहती हूं कि यह कोई दवा नहीं है; बच्चेका लालन-पालन करना कोई आसान काम नहीं है।

परंतु एक दूसरा तरीका है जिसकी चर्चा मैं कर चुकी हूं, वह है जो कुछ वह चाहे उसे दे देना। परंतु कठिनाई यह है कि दूसरे ही क्षण वह कोई दूसरी चीज मांगेगा और इस तरह वह मांगता ही रहेगा और उसकी मांगका कोई अंत न होगा। क्योंकि यह एक नियम है, कामनाका नियम है कि वह कभी तृप्त नहीं होती। अत-एव तुम अपनी पद्धति बदल सकते हो और बच्चेसे — मान लो कि वह काफी समझदार है — कह सकते हो : "देखो तो, तुम्हें यह चीज पानेकी कितनी इच्छा थी और अब, जब कि तुमने इसे पा लिया है, इसकी तुम कोई परवा नहीं करते, अब कोई दूसरी ही चीज मांगते हो। उसके साथ ही तुम वैसा ही बर्ताव करोगे।" परंतु वह यदि चालाक बच्चा हो तो वह उत्तर देगा : "जी हां, मेरी इच्छाओंसे मुझे मुक्त करनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि जो कुछ मैं मांगूं उसे दे दिया जाय।"

बहुतसे लोग इस अंतिम विचारको अपने जीवनभर पकड़े रखते हैं। जब उनसे उनकी कामनाओंको जीतनेके लिये कहा जाता है तब वे जवाब देते हैं, "उन्हें जीतनेका सबसे उत्तम उपाय है उन्हें तृप्त करना।" परंतु आवश्यकता यह नहीं है कि महज कामनाके विषयको ही बदल दिया जाय बल्कि आवश्यकता यह है कि उस आवेगको, स्वयं उस क्रियाको ही बदल दिया जाय। और इस उद्देश्य-को सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त मात्रामें ज्ञान और बुद्धि-विचार तथा अनुभवकी आवश्यकता है। इस चीजकी आशा तुम छोटे बच्चोंसे नहीं कर सकते। सबसे पहले तो उनमें विचार-वितर्क करनेकी

क्षमता ही नहीं होती और तुम इस बातको उन्हें समझा ही नहीं सकते, वे तुम्हारे तर्कोंको समझेंगे ही नहीं। यही कारण है कि माता-पिताओंको सामान्यतया और कोई रास्ता नहीं दिखायी देता और वे यह कहकर उन्हें रोक देते हैं, "चुप रहो, तुम बहुत परेशान करते हो।" इसी तरीकेसे वे इस कठिनाईसे बचते हैं।

पर यह कोई समाधान नहीं है। काम थोड़ा कठिन है, यह अटूट प्रयास और अचल-अटल धैर्यकी मांग करता है। कुछ लोग, बहुत बड़ी संख्यामें, ऐसे होते हैं जो, यद्यपि अब बच्चे नहीं होते, फिर भी सारे जीवन वैसे ही बने रहते हैं: वे भी बुद्धि-तर्ककी बात नहीं समझते। यदि तुम उनसे कहो कि उनकी बात युक्तिसंगत नहीं है और निरंतर उनकी कामनाओंको संतुष्ट करना संभव नहीं है तो वे बस यह समझते हैं कि "ये लोग बिलकुल तकलीफ देनेवाले हैं, ये मीठे स्वभावके नहीं हैं।" बस, इतना ही।

बच्चोंके संबंधमें हमें यह कोशिश करनी चाहिये कि उनकी कामनाओंकी दिशाको ही बदल दिया जाय, उन्हें अधिक अच्छी चीजोंकी, अधिक अच्छी क्योंकि अधिक सच्ची और मिलनेमें भी अधिक कठिन चीजोंकी, कामना करने दी जाय। उदाहरणार्थ, जब तुम किसी बच्चेको कामनाओंसे पूर्ण देखो तब उसके अंदर एक और भी ऊंचे प्रकारकी कामना डाल दो, अर्थात् केवल क्षणिक तुष्टि देनेवाली शुद्ध भौतिक वस्तुओंकी इच्छाके बदले हम उनमें जाननेकी, सीखनेकी, महान् होने आदि-आदिकी कामना जगा सकते हैं। यह निश्चय ही एक बड़ा अच्छा आरंभ होगा। चूंकि इन चीजोंको प्राप्त करना अधिक कठिन है इसलिये इससे उनकी संकल्प-शक्ति विकसित होगी और शक्तिशाली बनेगी। यदि कठिनाई स्थूल ढंगकी भी हो, जैसे, यदि तुम किसी बच्चेको एक गुड़िया बनानेको दो, कोई चीनी पहेली सुलझानेको दो या धैर्यकी आवश्यकता रखनेवाला कोई खेल दो तो उसमें बच्चा जो प्रयास करेगा उससे उसकी एकाग्रता, अध्यवसायकी शक्ति तथा विचारोंकी एक प्रकारकी स्पष्टता आदिके विकसित

होनेमें सहायता पहुंचेगी। इस प्रकार तुम बच्चेकी संकल्प-शक्तिको गलत चीजोंकी खोजसे हटाकर उचित चीजोंकी खोजमें लगा सकते हो। यह सच है कि ऐसा करनेके लिये यह आवश्यक होता है कि तुम निरंतर बच्चेके साथ-साथ रहते हुए इस बातपर ध्यान रखो और प्रयास करो, पर यही सबसे अधिक निश्चित पथ प्रतीत होता है। यह आसान नहीं है, पर यह अत्यंत फलोत्पादक है।

'ना' कहनेसे काम नहीं चलता, पर 'हां' कहनेसे भी नहीं चलता। मैं कुछ लोगोंको जानती हूं जिन्होंने अपने बच्चोंको अपनी मर्जीके अनुसार काम करने दिया। एक बच्चा ऐसा था जो कोई भी चीज अपने हाथमें आ जानेपर उसे खानेकी कोशिश करता था। स्व-भावतः ही वह बीमार पड़ा और अंतमें तंग आ गया और इस तरह उसकी आदत ही छूट गयी। फिर भी इस पद्धतिमें खतरा है। उदाहरणार्थ, एक दिन एक बच्चेके हाथमें दियासलाईका बाक्स आ गया और चूंकि उसे रोका नहीं गया इसलिये उससे खेलते समय वह जल गया, यद्यपि उसके बाद उसने फिर कभी दियासलाईके हाथ नहीं लगाया। यह पद्धति कभी-कभी घातक भी सिद्ध हो सकती है। क्योंकि कुछ बच्चे बड़े दुःसाहसिक होते हैं—अधिकांश बच्चे ऐसे ही होते हैं—और जब कोई कामना उनपर हावी हो जाती है तब संसारकी कोई चीज उन्हें रोक नहीं सकती। कुछ तो दीवारोंकी धारपर या घरके मुंडेरेपर घूमनेके लिये लालायित होते हैं; कुछको पानी देखते ही सीधे उसमें कूद पड़नेकी इच्छा होती है। कुछ तो ऐसे भी होते हैं जो सड़कपर मोटरगाड़ीको जाते देख उसी समय सड़कको पार करनेका खतरा उठाना पसंद करते हैं। अगर ऐसे बच्चोंको उनके ही मनमाने ढंगसे चलने दिया जाय तो यह परीक्षण कभी-कभी घातक सिद्ध हो सकता है। कुछ लोग अपने बच्चोंको इस प्रकारकी स्वतंत्रता प्रदान करते हैं और खतरा उठाते हैं। क्योंकि वे कहते हैं कि बाधा देना कोई उपाय नहीं है। जिन बच्चोंको कोई चीज अस्वीकार कर दी जाती है वे साधारणतया यह विश्वास नहीं

करते कि अस्वीकृत चीज बुरी है, बल्कि वे समझते हैं कि किसी चीजको जब कोई इनकार करना चाहता है तब वह उसे बस बुरा कह देता है। अतएव, यह तर्क किया जाता है कि, क्या स्वतंत्रता दे देना ही अधिक अच्छा नहीं है? उनका सिद्धांत है कि चाहे जो भी क्यों न हो, व्यक्तिगत स्वतंत्रताका आदर करना ही चाहिये। जो जीव अभी हालमें संसारमें आये हैं उनके सामने पुराने अनुभवों-को नहीं रखना चाहिये; उन्हें अपना निजी अनुभव प्राप्त करना चाहिये; उन्हें भूतकालके सभी बोझोंसे मुक्त होकर अपने निजी प्रयोग करने चाहियें। एक बार तो जब मैंने यह समझाया कि बच्चेको संभाव्य दुर्घटनाके विषयमें सावधान कर देना चाहिये तब मुझे यह उत्तर दिया गया कि इससे आपका कोई सरोकार नहीं है। और जब मैंने बार-बार यह कहा कि बच्चा मारा जा सकता है, तब उत्तर दिया गया, "उससे क्या? प्रत्येक व्यक्ति अपनी भवितव्यताका अनु-सरण करेगा ही। दूसरोंके मामलेमें हस्तक्षेप करना न तो किसीका काम है और न किसीके लिये उचित ही। अगर कोई मूर्खतापूर्ण कार्य लगातार करता रहे तो वह स्वयं उसका फल भोगेगा और अधिक संभव है कि वह स्वयं अपने-आप ही उन्हें करना बंद कर देगा, जो दूसरोंद्वारा बंद करनेके लिये बाध्य होनेकी अपेक्षा सौगुना अधिक अच्छा है।" परंतु स्वभावतः ही ऐसे उदाहरण होते हैं जिनमें बच्चा बंद तो अवश्य करता है पर उस ढंगसे नहीं जिस ढंगसे आशा की जाती या इच्छा की जाती है।

और यदि तुम एक सिद्धांत बना लो और उसका अनुसरण करने-की कोशिश करो तब मामला कठिन और जटिल बन जाता है। सच पूछा जाय तो प्रत्येक प्रसंग अलग-अलग होता है और प्रत्येक प्रसंगमें समुचित ढंगसे व्यवहार करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये सारे जीवन उसीमें लगे रहनेकी आवश्यकता है।



चिह्न और प्रतीक

कहा जाता है कि यदि तुम कोई टूटता हुआ तारा देखो और उस समय कोई दृढ़ संकल्प करो तो उसका पूरा होना निश्चित है। क्या यह सच है?

इसका अर्थ यह है कि जितने समयतक तारा दिखायी दे उसी समयके भीतर, अर्थात् बहुत ही थोड़े समयमें, तुम्हें अपनी अभीप्सा-को एक निश्चित आकार देनेमें समर्थ होना चाहिये। अब, यदि किसी अभीप्साको इतने थोड़े समयमें बनाया और एक निश्चित आकारमें प्रकट किया जा सके तो यह सूचित करता है कि वह अभीप्सा वहां बराबर ही, तुम्हारी चेतनाके एकदम अग्रभागमें ही विद्य-मान है। निःसंदेह, यह बात केवल आध्यात्मिक अभीप्साके विषयमें ही सच है: यह साधारण जीवनके मामलोंपर लागू नहीं होती। अतएव मेरा कहना है कि यदि तुम महज क्षणभरमें ही अपनी अभीप्सा को स्पष्ट रूपमें व्यक्त करनेमें समर्थ होओ तो इसका तात्पर्य यह है कि तुम्हारी अभीप्साका विषय सामने विद्यमान है और तुम्हारी चेतनामें उसीका प्राधान्य है। और अनिवार्यतः जो चीज तुम्हारी चेतनापर आधिपत्य जमाये हुए होती है उसके शीघ्र चरितार्थ होनेकी संभावना होती है।

मुझे परीक्षण करने और अनुभव प्राप्त करनेका अवसर मिला था। जैसा तुम कहते हो ठीक वैसा ही हुआ था। मैंने एक उल्का-को गिरते हुए देखा और जैसे ही वह गुजरा, ठीक उसी क्षण मेरी चेतनासे ये शब्द फूट निकले: "अपने शरीरमें भी भगवान्के साथ एकत्व प्राप्त करना होगा।" और एक वर्ष पूरा होनेसे पहले ही वह प्राप्त हो गया।

स्पष्ट ही वह उल्का उसका कारण नहीं था। वह इसलिये प्राप्त हुआ कि वह चीज मेरी चेतनापर अधिकार जमाये हुए थी, उसके सिवा मैंने कोई दूसरी बात नहीं सोची, उसके सिवा और किसी

चीजकी इच्छा नहीं की, उसके सिवा और किसी चीजके लिये प्रयास नहीं किया। साधारण तौरपर, ऐसा प्रतीत होता है कि इस सिद्धिको प्राप्त करनेमें प्रायः सारा जीवन ही लग जाता है — कहा जाता है कि कम-से-कम ३५ वर्ष तो लगते ही हैं। पर मेरे जीवनमें वह बारह महीनोंमें ही प्राप्त हो गयी थी।

इसका कारण यह था कि मैं पलक झपकते ही, जिसका प्रतीक तारेका टूटना है, जिस अभीप्साको केवल एक अस्पष्ट धारणाके रूपमें ही नहीं, बल्कि इन स्पष्ट और सुनिश्चित शब्दोंमें प्रकट कर सकी कि "अपने शरीरमें भी भगवान्‌के साथ एकत्व प्राप्त करना होगा", उस अभीप्साके ऊपर मेरी चेतना संपूर्ण रूपमें एकाग्र हो गयी थी। यहांपर प्रधान बात तारा नहीं है बल्कि अभीप्सा है। अनुभवको शीघ्र प्राप्त करनेके लिये उल्कापात होनेकी कोई आवश्यकता नहीं, बल्कि आवश्यकता यह है कि समूची सत्ता अपने संकल्पको बस उसी एक बिंदुपर एकाग्र कर दे।

नींद और शारीरिक पीडा

अगर किसीके शरीरमें बहुत अधिक दर्द हो तो वह भला कैसे सो सकता है?

उसके लिये एक प्रकारकी यौगिक शक्तिकी आवश्यकता है। सबसे उत्तम तरीका, सुनिश्चित पथ है शरीरसे बाहर निकल जाना।

जब शरीरको कष्ट हो, जैसे, जब तुम्हें सख्त बुखार हो, जब तुम रुग्ण होओ, अंतिम अवस्थामें पहुंचे हुए रोगी होओ तब करने लायक बस यही बात है कि तुम शरीरसे बाहर निकल आओ, अपनी प्राणमय सत्ताके साथ बाहर निकल आओ। यदि तुम योगी होओ और तुम्हें ज्ञान हो तो तुम शरीरसे बाहर बने रहनेपर ठीक उसके ऊपर रहोगे जिसमें कि तुम उसे देख सको। यदि तुम्हारा प्राणमय कोष, जिसमें कि तुम बाहर निकलते हो, पर्याप्त मात्रामें ठोस आकार

ग्रहण किये हुए हो तो तुम अपने शरीरको देख सकते हो। तुम अपने शरीरको देखते हो और उस समय तुम्हारी जो चेतना और शक्ति है उसके द्वारा उस स्थानपर शक्तिकी किरणोंको नियोजित कर सकते हो जिस स्थानपर शरीरको कष्ट हो रहा है। यह एक उच्च प्रक्रिया है, पर यह नीरोग होनेका पूर्ण सुनिश्चित साधन प्रदान करती है। यदि मनुष्यमें शक्ति और ज्ञान हो तो यह अचूक है। इसकी सहायतासे तुम कोई भी रोग और थोड़े ही समयमें दूर कर सकते हो। बस, इसके लिये आवश्यकता है पर्याप्त शिक्षा और अभ्यासकी। तुम इसे तुरत-फुरत नहीं कर सकते। परंतु सच पूछा जाय तो जब दर्द असह्य हो जाता है तब मनुष्य सहज और स्वाभाविक रूपमें ही अपनी मदद करते हैं; वे वेहोश हो जाते हैं। वेहोश होनेका मतलव है अपने शरीरसे वाहर निकल जाना। अतएव जो लोग शरीरसे अत्यधिक आवद्ध नहीं होते वे शरीरकी पीड़ाके अधिक वढ़ जानेपर वेहोश हो जाते हैं। वस बात यही है कि जव तुम शरीरको एक जड़ स्तूपके रूपमें छोड़कर वाहर निकल जाओ तव तुम्हारे पास कोई ऐसा आदमी होना चाहिये जो काफी समझदार और बुद्धिमान् हो। उस समय तुम्हें जगानेके लिये शरीर-को वहुत जोरसे हिलाना नहीं चाहिये। अगर पासमें रहनेवाले लोग भयभीत हो जायं और तुम्हारे सिरपर पानीकी वाल्टियां उंडेलने लगें तो फल वहुत बुरा हो सकता है। अन्यथा, मूर्च्छाका काल शांत भावसे, धीरे-धीरे, विश्रामकी अवस्थामें वदल जाता है, क्योंकि अव शारीरिक पीड़ाका अनुभव करनेवाली चेतना वहां नहीं होती। उस तथाकथित मूर्च्छाकी अवस्थामें शरीर क्रमशः शांत-स्थिर और अचल हो जाता है जिसमें कि वह पीड़ाके वावजूद भी विश्राम कर सके।

कुछ नीचे दर्जेकी साधनाएं भी हैं और उनका फल भी कुछ नीचा ही होता है। पर ये भी वहुत आसान नहीं हैं। एक तो है मस्तिष्क और दुःख भोगनेवाले भागके बीचका संवंध काट देना,

जब मस्तिष्क प्रकंपनको नहीं ग्रहण करता तब पीड़ाका भी अनुभव नहीं होता। वास्तवमें डाक्टर लोग जब संज्ञाहीन बनाकर चीर-फाड़ करते हैं तब वे ऐसा ही करते हैं। रोगग्रस्त भागके चारों ओरके स्नायविक संयोगको संज्ञाहीन बना दिया जाता है और फिर पीड़ाका अनुभव नहीं होता या वह घटकर बहुत कम हो जाती है। परंतु यहां तुम्हें इसे अपनी संकल्पशक्ति और चेतनाके द्वारा करना होगा; और इसके लिये एक गुह्य शक्तिकी आवश्यकता होती है। कुछ लोग अपने-आप स्वभावतः ही ऐसा कर सकते हैं; पर ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम होती है। अगर तुम इतनी दूर जानेमें असमर्थ होओ तो एक दूसरा तरीका है जो तुम्हारी पहुंचके अंदर हो सकता है। अपनी यंत्रणा और दुःख-कष्टके ऊपर मन एकाग्र न करो या उसी-की कल्पना-जल्पनामें मशगूल मत रहो; अपना ध्यान वहांसे खींच लो और उसे अन्यत्र कहीं लगा दो। जितना ही अधिक तुम अपने कष्टकी बात सोचोगे वह उतना ही अधिक बुरा होता जायगा। यदि तुम उसके लक्षणों और संकेतोंको देखते रहनेमें डूबे रहो, प्रायः उसके आक्रमणकी प्रतीक्षा करते रहो तो निश्चय ही यह एक तरहसे उसका स्वागत करना है, उसे प्रश्रय देना तथा उसके बने रहनेमें सहायता करना है। यही कारण है कि तुम्हें उस अवस्था-में कोई हलकी चीज पढ़नेकी या कोई चीज किसीसे पढ़ाकर सुननेकी सलाह दी जाती है, जिसमें कि तुम्हारा ध्यान दूसरी ओर लग जाय।

जब तुम सोने जाते हो तब आदर्श अवस्था है सर्वांगपूर्ण विश्रांति-में प्रवेश कर जाना, कहनेका तात्पर्य, शरीरकी निश्चलतामें, प्राणकी शांतिमें, मनकी अखंड नीरवतामें घुस जाना और चेतनाका समस्त क्रियाकलापसे बाहर निकलकर सच्चिदानंदमें चले जाना। यदि तुम ऐसा कर सको तो जब तुम उठोगे तब असाधारण शक्ति, पूर्ण प्रसन्नता आदिकी भावनासे ओतप्रोत होकर जगोगे। पर इसे करना आसान नहीं है। फिर भी ऐसा किया जा सकता है। यह आदर्श अवस्था है।

परंतु साधारणतया ऐसा कभी नहीं होता; अधिकांश समय, मोटे रूपमें तुम्हारी नींदका पूरा समय सब प्रकारकी अव्यवस्थित क्रियाओंमें ही नष्ट हो जाता है: तुम अपने बिछौनेपर छटपटाते हो, उछलते-कूदते हो और यहांतक कि बातें करते और चिल्लाते भी हो। इसका मतलब है कि तुम्हें बिलकुल ही विश्राम नहीं मिलता।

सामान्यतया स्वप्नोंका एक लंबा-सा तांता लग जाता है जो व्यर्थ और थकानेवाले होते हैं और तुम्हारे विश्राममें बाधा पहुंचाते हैं। तुम्हें इन सबसे बचना चाहिये। तुम इन सबसे बच सकते हो यदि ठीक सोनेसे पहले तुम एकाग्र होनेके लिये थोड़ा-सा प्रयास करो, अर्थात् किसी अभीप्सा या प्रार्थनाकी सहायतासे अपने अंदरकी सर्वोत्तम वस्तुके साथ संबंध स्थापित करनेकी कोशिश करो। ऐसा करो और फिर सो जाओ। अब, अगर तुमने किसी तरह सफलता-पूर्वक अपना ध्यान जमा लिया हो तो नींदमें तुम्हें ऐसे ढंगके स्वप्नों बल्कि अनुभवोंके आनेकी संभावना हो जाती है जो तुम्हें याद रहेंगे और जो उन समस्याओंसे संबंधित उपयोगी संकेत या चिह्न होंगे जिनका कोई उत्तर तुम्हारे पास नहीं था; वे उन विशेष परिस्थितियोंके विषयसे संबंधित हो सकते हैं जिनमें तुम्हें कोई निर्णय करना है और तुम वैसा करनेमें असमर्थ हो; अथवा वे तुम्हारी चेतनाकी किसी चीजके विषयमें हो सकते हैं जो जागृत अवस्थामें तुम्हें स्पष्ट नहीं दिखायी देती, क्योंकि साधारण स्थितिमें तुम उसे देखने या पहचाननेके आदी नहीं हो, पर जिसे तुम किसी-न-किसी रूपमें हानि पहुंचाते हुए अनुभव करते हो। ये सब चीजें एक ज्ञानदायी प्रतीकात्मक स्वप्नके रूपमें तुम्हारे सामने प्रकट हो सकती हैं। इस तरह जो चीजें पहले अस्पष्ट थीं वे अब स्पष्ट हो जाती हैं। और यह इस बात-पर निर्भर नहीं करता कि तुम सारे दिन कैसे रहे या क्या करते रहे, बल्कि अधिकतर जिस तरीकेसे तुम सोते हो उस तरीकेपर निर्भर करता है। ठीक सोनेसे पहलेका सच्ची अभीप्साका एक मिनट

तुम्हारी नींदको अंधकार लानेवाली शक्तिके वदले एक शक्तिशाली सहायक बनानेके लिये पर्याप्त होता है।

फिर नींदसे वाहर निकलनेकी भी वैसी ही एक समुचित पद्धति है जैसी कि उसमें घुसनेकी एक समुचित पद्धति। जैसे ही तुम जगते हो वैसे ही विछौनेसे उछल भागने या उसीमें छटपटाते रहनेके वदले आंख खुलनेके समय तुम्हें शांत और स्थिर वने रहना चाहिये; उस समय अपने अंगोंको जरा भी हिलाये-डुलाये विना तुम धीरे-धीरे जगो; तुम उस चीजको एक प्रकारकी अस्पष्ट छाप अव भी अनुभव करनेकी चेष्टा करो जो घटित हुई है, जो विचित्र और अपरिचित भी है। अपनेको शांत बनाये रखो और देखो, खूब वारीकीसे और ध्यान-पूर्वक देखो। धीरे-धीरे तुम देखोगे कि तुम्हारी विगत रात्रिकी एक क्रियावलीकी एक प्रकारकी अर्द्ध-स्मृति जागृत हो रही है। एक-दम एकाग्र और निरंतर स्थिर और अचल बने रहो, क्रमशः एक स्वप्नके अंतिम छोरकी जैसी कोई चीज प्रकट होगी और यदि तुम उसे खींचो, उसीका अनुसरण करो, अर्थात् उसीके सहारे पीछेकी ओर चले जाओ — अपने-आपको सर्वदा शांत-स्थिर रखते हुए — तो तुम प्रायः अपने समूचे स्वप्नको याद कर सकोगे, जो उस रातका तुम्हारा काफी मजेदार कार्य-कलाप था।

तुम रातमें नींदके समय बहुतसे कार्य करते हो। तुम उनमेंसे अधिकांश कार्योंको भूल जाते हो। परंतु तुम यदि उन्हें याद कर सको, उनके विषयमें सचेतन हो सको, तो तुम उन्हें अपने वशमें लाना भी आरंभ कर सकोगे। किसी चीजके विषयमें सचेतन होने-से पहले, उसके विषयमें सचेतन हुए विना, तुम उसपर अपना अधि-कार नहीं जमा सकते। सचेतन होनेके कारण ही तुम्हें अपनी आधिपत्य जमानेकी शक्ति प्राप्त होती है। यदि तुम नींदमें होने-वाली क्रियाओंको अपने वशमें कर सको तो तुम्हारी नींद आराम देनेवाली वन सकती है। कभी-कभी जव तुम जगते हो तव तुम अपनेको बिछौनेपर जानेके समयसे भी अधिक थका हुआ महसूस

करते हो। इसका कारण यह है कि तुम अपनी नींदमें बहुत अधिक निरर्थक कार्य करने, अपने प्राण-स्तरमें बेतहाशा इधर-उधर दौड़ने, अपने मनमें ऊटपटांग घूमते रहने आदि-आदिके अभ्यासी हो। स्वभावतः ही जब तुम जगते हो तब मालूम होता है कि तुमने विश्रामका आस्वादन नहीं किया है। कभी-कभी तुम बुरे स्थानोंमें, अंधेरे और गंदे प्रदेशोंमें जाते हो और वहां तुम संघर्ष करते हो, युद्ध करते हो, मारते और मार खाते हो तथा अंतमें तुम लंबे हो जाते हो। यदि तुम सचेतन हो जाओ और इनपर संयम प्राप्त कर लो तो तुम इन सब चीजोंसे बच सकते हो।

* *

जब कोई अपनेको मरा हुआ या मरता हुआ देखता है तब इसके कई अर्थ होते हैं। इसका एक अर्थ आध्यात्मिक मृत्यु या प्राणिक मृत्यु या तुम्हारे अंदरकी जो चीज जानेकी है उसकी मृत्यु हो सकता है। अंतिम प्रसंगमें इसका अर्थ है चेतनामें होनेवाली एक प्रगति। इसका अर्थ पूर्व-सूचना भी हो सकता है। इसका अर्थ आगे-पीछेकी घटनाओंपर निर्भर करता है।

मनका बाजार

तुम कल्पना नहीं कर सकते कि मस्तकके भीतर कैसा बाजार है। यह बड़ी ही भयावनी चीज है। यदि तुम सचमुचमें जरा अलग होकर यह देखो कि वहां क्या हो रहा है तो तुम स्तंभित हो जाओगे। अतएव तुम्हें इसे एक क्रममें बैठाना होगा, स्पष्ट रूपमें यह खोज करनी होगी कि इसमें क्या है और फिर इसको सजाना होगा; तुम्हें यह ख्याल रखना होगा कि दो विरोधी विचार एक साथ समानांतर रेखामें न दौड़ रहे हों।

मैं काफी संख्यामें ऐसे लोगोंको जानती हूं जो अपने मस्तिष्कमें विरोधी विचारोंका पोषण करते हैं, उन विचारोंमें बिलकुल ही संगति

नहीं होती — यहां संगतिका कोई प्रश्न ही नहीं होता — बल्कि वहां विचार साथ-साथ ऐसे दो भाइयोंकी तरह निवास करते हैं जो चिरदिन झगड़ों और विरोधोंमें तल्लीन रहते हैं। कहनेका मतलब, वहां दो विचार तवतक नहीं रह सकते जबतक कि तुम उन्हें एक उच्चतर और विशालतर दृष्टिके अंदर ऊपर उठाकर समन्वित और युक्त नहीं कर देते; पर इसका अर्थ होता है एक उच्च कोटिका कार्य। बहुधा लोग यह जानते भी नहीं कि वे अपने विरोधी विचारों-के द्वारा स्वयं अपना ही विरोध कर रहे हैं, वे किसी तरह विचलित नहीं होते। अगर मैं तुम्हें उदाहरण दूं — वे असंख्य हैं — तो तुम एक साथ मिले-जुले असंगत विचारोंकी विलक्षण अवस्थाको देखकर हंसे बिना नहीं रहोगे।

मैं तुम्हें एक काम देना चाहती हूं। सभी विषयोंमें तुम्हारे अपने विचार हैं। संसारके विषयमें, जीवनके विषयमें, विश्व क्यों है, कहांसे आया है और किधर जा रहा है, कहांसे हम यहां आये हैं, हमारा वर्तमान कर्तव्य क्या है, भविष्यमें हमें क्या सिद्ध करना है, आदि-आदि विषयोंमें निश्चय ही तुम अपने विचार रखते हो। अब इन सब विचारोंको अपने सामने रखनेकी कोशिश करो और फिर उन्हें सजाओ। क्या तुम्हें यह काम आसान मालूम होगा? निस्संदेह ऐसा करनेसे तुम्हें आनंद होगा और तुम आश्चर्यजनक चीजोंको खोज निकालोगे। सबसे पहले, स्वयं प्रदर्शनका यह काम ही, अर्थात् अपने सामने विचारोंको पास-पास रखनेका महज यह काम ही, तुम्हारी कक्षामें दिये हुए किसी विषयपर प्रबंध लिखनेके समान किसी विशेष विषयपर तुम्हारे जितने विचार हैं उन सबको सामने ले आना ही, तुम्हारे सामने कितनी ही अनोखी बातोंको प्रकट कर देगा। यदि तुम्हें पहलेसे ही किसी केंद्रीय विचारको, किसी केंद्रीय शाश्वत सत्यको धारण करनेका अभ्यास न हो, — अगर ऐसा करना संभव हो और उसके चारों ओर तुमने सभी पास-पास रहने-वाले विचारोंको क्रमसे रख लिया हो, एक युक्तिसंगत ढंगसे उन्हें

सुसंगठित कर लिया हो और मेरा कहना है कि इस तरहकी कोई चीज यदि तुमने पहले ही न कर ली हो — तो एक दुःखपूर्ण स्थितिमें न सही, कम-से-कम एक विकट स्थितिमें तो तुम अवश्य ही अपनेको पाओगे। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि एक घंटेके भीतर न जाने कितने परस्परविरोधी विचारोंको तुम जरा भी आश्चर्य किये विना सोच जाते हो! उदाहरणके लिये इस विषयको ले लो: "वह कौनसा लक्ष्य है जिसकी ओर जीवन अग्रसर हो रहा है?" अथवा "भला मनुष्य केवल मरनेके लिये ही क्यों जन्म ग्रहण करते हैं?"— कोई भी जरा व्यापक विषय लो और इसके जैसा कुछ हदतक निरपेक्ष विषय भी लो, ऐसे प्रश्न न लो कि आज 'फुटबाल' ही क्यों और 'वास्केट बाल' क्यों नहीं, — ऐसी वातोंकी व्याख्या तो आसानीसे दी जा सकती है —, और फिर उस विषयपर अपने सभी विचारोंको एक कतारमें रखनेकी चेष्टा करो; तुम देखोगे कि सारा मामला ही कितना विचित्र है!

यह कैसे पहचाना जाय कि कौनसा विचार तो स्वयं अपना है और कौनसा विचार अन्य स्थानसे (किसी पुस्तक या व्यक्तिसे) आया है?

ऐसी कोई बात ही नहीं कि हम यह कह सकें कि यह विचार तो मेरा है और यह विचार दूसरोंका है। किसी आदमीमें ऐसा कोई विचार नहीं जो पूर्ण रूपसे उसका अपना ही हो। एक विस्तृत प्रदेश है जिसमेंसे कोई भी आदमी अपनी व्यक्तिगत रुचिके अनुसार उन्हें खींच सकता है। विचार सामाजिक संपत्ति हैं, साझेकी जायदाद हैं। पर उनके कई स्तर होते हैं। एक तो अत्यंत सामान्य या सर्वजनसुलभ स्तर है जहांपर हम सबने अमूर्त्त धारणाओंके एक सघन स्तूपके अंदर अपना मस्तिष्क डुबा रखा है। यह प्रत्येक मनुष्यका ही स्तर है। दूसरा स्तर जरा इससे ऊंचा है, वह विचारोंका, जैसा कि उन्हें नाम दिया जाता है, स्तर है। फिर उससे भी आगे दूसरे स्तर हैं, बहुतेरे स्तर हैं, कुछ तो शब्दोंके राज्यसे भी परे

हैं, फिर कुछ दूसरे भावनाओंके राज्यके अंदर हैं। जो लोग काफी ऊंचाईतक चढ़ पाते हैं, वे ज्योति-जैसी दिखायी देनेवाली किसी चीज-को पकड़ने और उसकी भावनाओंकी पुड़िया या उसके विचारोंके पुलिंदेके साथ उसे नीचे उतार लानेमें समर्थ होते हैं। जो भावना एक उच्चतर क्षेत्रसे नीचे उतारी जाती है वह अपने-आपको संगठित करती है, ऐसे विभिन्न विचारोंमें अपनेको मूर्तिमान् करती है जो उस भावनाको भिन्न-भिन्न ढंगसे प्रकट करनेके उपयुक्त होते हैं। फिर, यदि तुम लेखक, कवि या कलाकार हो, और उसे और भी नीचे अधिक स्थूल आकारोंमें उतार लाओ तो तुम महज एक भावनाको ही, संभवतः महज एक छोटी-सी भावनाको, पर एक महान् ऊंचाईसे आनेवाली भावनाको ही प्रकट करनेवाली नाना प्रकारकी अभिव्यंजनाएं, अनंत विधियां प्राप्त कर सकोगे। यदि तुम ऐसा कर सको तो तुम यह भी जान जाओगे कि विशुद्ध भावना और उसे व्यक्त करनेकी पद्धतिमें क्या भेद होता है। अगर तुम स्वयं ऐसा करनेमें असमर्थ होओ तो तुम दूसरोंकी सहायता ले सकते हो, तुम दूसरे व्यक्तियों और पुस्तकोंसे सीख सकते हो। उदाहरणार्थ, तुम इस बातको ध्यान-पूर्वक देख सकते हो कि किसी विशिष्ट भावनाको विभिन्न कवियोंने किस प्रकार विभिन्न रूप प्रदान किये हैं। एक तो शुद्ध या मौलिक भावना होती है, फिर आदर्श-रूप या श्रेणी-सूचक भावना होती है और फिर उसके बाद बहुत-सी सुस्पष्ट रचनाएं होती हैं। तुम इस तरह अपने मनको शिक्षित कर सकते हो, उसे नमनीयता, सूक्ष्मता, शक्तिशालिता तथा अन्यान्य गुणोंको आयत्त करना सिखा सकते हो।

सच पूछो तो, यदि तुम वास्तवमें बुद्धिमान् होना चाहो तो तुम्हें थोड़ा-सा मानसिक व्यायाम करना सीखना होगा, ठीक उसी तरह जिस तरह तुम यदि शक्तिशाली समर्थ शरीर पाना चाहते हो तो तुम्हें शारीरिक व्यायाम करना पड़ता है। जिन लोगोंने कभी मान-सिक व्यायाम नहीं किया है उन्हें बड़ा छोटा-सा और अविकसित मस्तिष्क होता है; अपने सारे जीवन वे बच्चोंकी तरह ही विचार

करते हैं। मानसिक व्यायामका मतलब यह है कि तुम्हें यह जानना चाहिये कि इसे कैसे करना चाहिये और फिर इसे गंभीरतापूर्वक करना चाहिये। सबसे पहले इसका मतलब यह है कि तुममें कोई बद्ध धारणा नहीं होनी चाहिये, जैसे, यह विचार सत्य है और वह विचार असत्य है, यह सूत्र शुद्ध है और दूसरा सूत्र अशुद्ध है अथवा यह धर्म सच्चा है और दूसरा धर्म झूठा है इत्यादि-इत्यादि। अगर तुम इस धारामें अग्रसर होओ तो तुम बहुत शीघ्र बुद्धिहीन, वज्रमूर्ख बन जाओगे। तब तुम्हें क्या करना चाहिये? धर्मका ही विषय ले लो, तुम्हें बारी-बारीसे सभी धर्मोंको लेकर यह देखना चाहिये कि किस तरह सबने किसी-न-किसी प्रकारकी स्वयं-भू सत्ताके प्रति होनेवाली एक ही मानवीय अभीप्साको व्यक्त किया है। तुम उस-की तुलना कर सकते हो और उनके भेदको निरूपित कर सकते हो, उन्हें समझ सकते हो, उन्हें तौल और माप सकते हो, यह खेल बहुत ही मजेदार मालूम होगा। अब, जब कि तुम सब प्रकारके विचारों-को अधिकृत कर चुके हो, अभिव्यंजनाके सभी तरीकोंको पकड़ चुके हो, तुम उनके परे चले जानेकी कोशिश कर सकते हो, तुम उनकी ओर देख सकते हो और अनंत कालसे जिस तर्क-वितर्कमें मनुष्यजाति संलग्न है उसपर हंस सकते हो। अब तुम अपने मनके अधिपति हो और मनुष्यजातिका जो अत्यंत सामान्य अभ्यास प्रतीत होता है— केवल इसी कारण उत्तेजित हो जाना कि कोई आदमी तुम्हारी ही तरह विचार नहीं करता — उसके अधीन अब तुम नहीं हो।

वृक्षपर रहनेवाली आत्माएं

आपने उस दिन हमें बताया था कि कुछ आत्माएं वृक्षमें आबद्ध रहती हैं। वे मुक्त कैसे हो सकती हैं?

वे मुक्त क्यों होंगी?

पर आपने कहा था कि जब किसी आदमीने वृक्षोंपर रहनेवाली

आत्माओंपर कृपा करके उनकी ओरसे प्रार्थनाएं कीं तब वे मुक्त हुईं।

हां, पर वह बात तो कहानीके अंदर थी। वह एक ईसाई-धर्मकी कहानी थी और एक शिक्षा देनेके लिये उस तरह कही गयी थी। वह बात यह समझानेके लिये कही गयी थी कि यदि तुम दुष्ट हो तो तुम्हें मरनेके बाद भी कष्ट भोगना पड़ेगा, पुण्यमय जीवन ही तुम्हें यंत्रणासे बचा सकता है। परंतु सच पूछा जाय तो यहां पाप और दंडका कोई प्रश्न ही नहीं है; बात यह नहीं है कि आत्माएं दंड भोगनेके लिये ही वृक्षोंसे आसक्त हो जाती हैं। जब कोई आदमी मरता है तब उसका प्राण-पुरुष शरीर छोड़ देता है और बाहर निकल जाता है; परंतु वह अपनेको एक अपरिचित और आश्रयशून्य वातावरणमें पाता है, विशेषकर जब कि पृथ्वीपर उसका अपना कोई नहीं होता, उसके मित्रों और संबंधियोंमेंसे कोई नहीं होता जो उसे उचित रूपमें सहायता कर सके, उस नये देशमें उसे रास्ता दिखा सके या रक्षा कर सके जहां हानि पहुंचानेके लिये विरोधी सत्ताएं विद्यमान हैं। ऐसी परिस्थितिमें बहुधा एक पेड़ बहुत सहज आश्रय सिद्ध होता है, एक ऐसा बड़ा पुराना वृक्ष जिसकी प्रेमिल शाखाएं फैली हुई हों, जिसमें प्रबल प्राण-शक्ति हो। वास्तवमें वृक्षकी सत्तामें जो प्रवहमान जलीय तत्त्व, रस, होता है अर्थात् उस-की जीवनी-शक्तिका आधार होता है उसे ही अपना भौतिक अवलंब और आश्रय समझकर उसकी ओर मृत व्यक्तिका प्राणमय पुरुष आकर्षित होता है। यहांपर लाचारीके साथ कैद होने और छुट-कारा पानेकी इच्छाका कोई प्रश्न ही नहीं है।

क्या ये आत्माएं हानि पहुंचानेवाली नहीं होतीं?

किस रूपमें? मालूम होता है कि वे साधारणतया हानि पहुंचाने-वाली नहीं होतीं।

परंतु हम ऐसे लोगोंकी कहानियां सुनते हैं जिन्हें इन आत्माओंने अभिभूत किया, परेशान किया और सताया है।

वे एक दूसरे ही प्रकारकी सत्ताएं होती हैं। वे प्राणमय जगत्-की सत्ताएं होती हैं और विरोधी शक्तियां हैं। यहां हम एक मृत व्यक्तिकी प्राण-सत्ताके अवशिष्टांशकी चर्चा कर रहे हैं। परंतु विरोधी शक्तियों या सत्ताओंद्वारा अधिकृत होनेवाले उदाहरणोंमें भी सच्चा सत्य बहुत अधिक बार दूसरे ही प्रकारका होता है। साधारण तौरपर ये सत्ताएं या भूत-प्रेत, जैसा कि इन्हें पुकारा जाता है, स्वयं मनुष्योंकी सृष्टियां हैं, इसके सिवा और कुछ नहीं हैं। कहनेका तात्पर्य, भय ही उन्हें उत्पन्न करता है; वह महज एक मानसिक रचना होता है जिसे सत्य मान लिया जाता है। और जितना ही अधिक भय होता है उतना ही अधिक सुस्पष्ट और प्रभावशाली वह रचना प्रतीत होती है। ऐसे सैकड़ों उदाहरणोंके साथ मेरा काम पड़ा है और मैंने देखा है कि बहुत थोड़ेसे ही प्रसंग ऐसे होते हैं जिनमें कल्पनासे अधिक कोई चीज होती है। कुछ दिन पहले मुझे पासके एक पेड़के विषयमें यह कहा गया कि उसपर एक भूत रहता है। हमारे ग्वाले उस भूतसे बहुत डरते थे और उन्होंने उसे देखा भी था! मैंने अमृतको भेजा और कहा कि वहां कुछ धूपवत्तियां जलाकर उस पेड़के चारों ओर दो-चार बार परिक्रमा करो और लोगोंमें कह दो कि वह चला गया। हां, वह वास्तवमें चला ही गया; क्योंकि वह कोई बहुत अधिक वास्तविक सत्ता नहीं था। जैसा कि मैंने बताया है, अधिकांश भूत-प्रेत हमारे आतंककी ही सृष्टियां होते हैं।

मृत व्यक्तियोंकी आत्माएं कितने दिनोंतक अपने पेड़ोंपर रहती हैं?

यह कई बातोंपर निर्भर करता है। कुछ सत्ताएं ऐसी होती हैं जो केवल थोड़े समयतक ही ठहरती या रहती हैं; कुछ दूसरी ऐसी होती हैं जिनकी गठन अधिक मजबूत होती है और यदि वह पेड़ हजार वर्षोंतक बना रहे तो वे भी हजार वर्षोंतक अपने आश्रयस्थलमें निवास कर सकती हैं।

क्या ऐसी आत्माएं पशुओंमेंसे भी निकलती और वृक्षोंपर रहती हैं?

संभव नहीं। मृत्युके बाद बने रहने योग्य होनेके लिये प्राण-पुरुषका एक विशेष प्रकारका विकास और संगठन होनेकी आवश्यकता होती है। पशुकी प्राण-सत्ता अत्यधिक अगठित और तरल होती है, शरीरके साथ अत्यधिक बद्ध होती है और इस कारण एक स्वतंत्र सत्ताके रूपमें बने रहनेके योग्य नहीं होती। जब कोई जानवर मरता है तब उसकी प्राण-सत्ता प्रायः तुरंत भंग हो जाती है और प्रकृतिकी सामान्य शक्तियोंके अंदर घुलमिल जाती है। केवल मनुष्य-में ही शरीरके विलीन हो जानेके बाद भी ऐसे आकारके बने रहनेकी संभावना होती है, क्योंकि मनुष्यके अंदर एक मनोमय पुरुष होता है जो एक प्रकारके व्यष्टिभूत आकारमें प्राण-शक्तिको संगठित करता है।

क्या कुत्ते मनुष्यसे अधिक विश्वासपात्र नहीं होते ?

हां, होते हैं, क्योंकि विश्वासपात्र होना उनका स्वभाव ही है और उनमें मनुष्यकी मानसिक जटिलताएं नहीं हैं। मनुष्योंके मनकी जटिल ग्रंथियां ही उन्हें विश्वासपात्र बननेसे रोकती हैं। अधिकांश मनुष्य इसलिये विश्वासपात्र नहीं होते कि वे छल-कपटका शिकार होनेसे डरते हैं, वे प्रतारित होने, अनुचित रूपमें व्यवहृत होनेसे भय करते हैं। फिर उनमें जो विश्वासपात्रता होती है उसके पीछे बरा-बर ही अहंकारकी एक बहुत बड़ी मात्रा छिपी होती है, वहां कम या अधिक सचेतन रूपमें एक प्रकारका मोल-तोल, लेन-देन करनेका भाव होता है; 'मैं तुम्हारे प्रति सच्चा हूं। तुम भी मेरे प्रति सच्चे होओ, दूसरे शब्दोंमें, तुम्हें मेरे प्रति अच्छा होना चाहिये, मुझसे अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिये इत्यादि; कुत्तोंमें ये सब जटिलताएं नहीं होतीं, क्योंकि उनमें बहुत आरंभिक अवस्थाका बीज-रूप मन होता है। उनमें युक्ति-तर्ककी यह विचित्र क्षमता नहीं होती जो मनुष्यको ऐसी मूर्खता करनेके लिये प्रेरित करती है। पर, निश्चय ही, हम कुत्तेकी अवस्थामें वापस नहीं जा सकते। अब हमारा कर्तव्य यह है

कि हम और ऊपर उठें, अतिमानव बनें, यदि हमें ऐसा कहनेकी छूट दी जाय तो हम कह सकते हैं कि एक उच्चतर स्तरपर कुत्तेके गुणको प्राप्त करें, अर्थात् सहज-प्रेरणावश, अंध-भावसे, अर्द्ध-चेतन रूपमें, एक प्रकारकी दबाव डालनेवाली आवश्यकताके वश विश्वासपात्र होनेकी जगह यह एक सज्ञान, स्वेच्छाकृत, सुचिंतित विश्वासपात्रता होनी चाहिये, और सबसे ऊपर अहंकारसे मुक्त होनी चाहिये। एक ऐसा बिंदु है जहां आकर सभी गुण मिल जाते हैं; यह वह बिंदु है जो अहंभावसे परे है। अगर हम विश्वासपात्रता या भक्ति या प्रेम या सेवा-भावको लें तो ये सब, जब ये अहंभावके स्तरसे ऊपर होते हैं तब, इस अर्थमें एक-दूसरेके जैसे ही होते हैं कि ये अपने-आपको दे देते हैं और बदलेमें कुछ नहीं मांगते। और यदि तुम एक पग और ऊपर उठ जाओ तो तुम देखोगे कि इन्हें कर्तव्य या त्यागकी भावनाके साथ नहीं किया जाता बल्कि एक तीव्र आनंदके वश किया जाता है जो अपना प्रतिदान स्वयं अपने अंदर वहन करता है, जिसे बदलेमें कोई चीज लेनेकी आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह स्वयं ही आनंद होता है। परंतु इसके लिये तुम्हें पहले बहुत ऊपर उठ जाना होगा जहांपर अब अपनी ओर मुंह फेरनेका भाव नहीं रह जाता, तुम्हें नीचे खींच लानेवाली इन गतियोंके लिये अवकाश नहीं रह जाता — अपने प्रति उस प्रकारकी सहानुभूति, आत्मदानके लिये स्थान नहीं रहता जिसे मनुष्य अपने प्रति अनुभव करता है और कहता है, "मैं बिचारा!" यह अत्यंत पतनकारी भावुकता है और यह तुरत तुम्हें एक अंधे गढ़ेमें खींच ले जाती है।

उसे तुम्हें बहुत दूर पीछे छोड़ देना होगा यदि तुम विश्वासपात्रताका आनंद, आत्मदानका हर्ष पाना चाहो, जो यह बिलकुल नहीं देखता कि उसका समुचित रूपसे स्वागत किया गया है या नहीं, उसका कोई उत्तर मिलता है या नहीं। जो कुछ हम करें उसके बदलेमें कभी किसी प्रतिदानकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये, किसी चीजकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये, वैराग्य-भावके द्वारा या त्यागकी भावनाके

साथ नहीं बल्कि उस चेतनामें निवास करनेके आनंदके कारण करना चाहिये : बस, यही पर्याप्त है, बाहरसे मनुष्य जो कुछ प्राप्त कर सकता है उससे यह बहुत अधिक होता है।

यहांका कार्य

सांसारिक दृष्टिकोणसे देखें, प्राप्त फलकी दृष्टिसे देखें तो निश्चय ही यह कहा जा सकता है कि चीजें और भी अच्छे रूपमें की जा सकती हैं। परंतु जो प्रयास इसमें किया गया है, उसकी बात मैं कह रही हूं और 'प्रयास' शब्दको मैं अत्यंत गंभीर अर्थमें ले रही हूं। कर्म शरीरसे की गयी प्रार्थना है। उस प्रयासके साथ कर्म करनेसे भगवान् संतुष्ट होते हैं, दिव्य चेतनाकी जिस आंखने उसे देखा है वह निश्चय ही प्रसन्न होती है। यह बात नहीं कि मानवीय दृष्टिकोणसे कोई इससे अच्छा कर ही नहीं सकता। परंतु हमारे लिये यह विशिष्ट प्रयास बहुतसे प्रयासोंमेंसे एक है; हमारी साधनाकी यह महज एक क्रिया है। हम अन्य बहुतसी चीजोंमें संलग्न हैं। किसी एक विशिष्ट कार्यकी पूर्णताकी जैसी किसी स्थितिमें उठा ले जानेके लिये समय, धन और साधनोंकी आवश्यकता होती है जो हमारे पास नहीं हैं। परंतु हम एक ही चीजमें पूर्णता लाना नहीं चाहते, हमारा उद्देश्य तो सर्वांगीण उपलब्धि है।

बाहरी दृष्टिको टीका-टिप्पणी करनेके लिये और बहुत अधिक टिप्पणी करनेके लिये बहुतसी चीजें दिखायी दे सकती हैं, पर जो कुछ किया गया है उस दृष्टिसे बहुत अच्छा किया गया है। बाहरी दृष्टिके अंदर तुम्हारे साथ सब प्रकारकी मानसिक, बौद्धिक रचनाएं रहती हैं और यहां जो कुछ किया गया है उसमें तुम्हें कोई चीज असाधारण नहीं दिखायी देती। परंतु उसके कारण तुम उस चीजको खो बैठते हो जो पीछे विद्यमान है : अर्थात् साधना। एक गभीरतर चेतनाको एक ऐसी सिद्धिकी ओर प्रगति दिखायी देगी जो सबको

अतिक्रम करती है। बाहरी दृष्टि आध्यात्मिक जीवनको नहीं देखती; वह अपनी निजी तुच्छतासे ही विचार करती है।

कुछ लोग हमारे विश्वविद्यालयमें भर्ती होनेके लिये पत्र लिखते हैं और वे पूछते हैं कि हम किस प्रकारकी सनद या उपाधिके लिये तैयार करते हैं, किस प्रकारका जीवन हम विकसित करते हैं। उन्हें मैं कहती हूं: कृपया दूसरी जगह जाइये, यदि आप इसे चाहते हैं। इस दृष्टिसे भारतमें भी दूसरे बहुतसे स्थान हैं जो हमारे स्थानसे बहुत अच्छे हैं। हमारे यहां न तो उनके जैसा साज-सामान है न उत्कृष्टता। आप जिस तरहकी सफलता खोजते हैं उसे आप वहां पायेंगे। हम उनके साथ प्रतियोगिता नहीं करते। हम तो एक दूसरे ही क्षेत्रमें, एक भिन्न स्तरपर विचरण करते हैं।

परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं तुमसे अपनेको दूसरोंसे श्रेष्ठ अनुभव करनेको कहती हूं। सत्य-चेतना अपने-आपको श्रेष्ठ समझनेमें असमर्थ होती है। केवल तुच्छ चेतना ही अपनी श्रेष्ठता दिखलानेकी चेष्टा करती है। ऐसे व्यक्तिसे तो एक बच्चा भी अधिक विकसित होता है; क्योंकि उसका कार्य-कलाप स्वाभाविक होता है। समस्त तुच्छतासे ऊपर उठ जाओ। भगवान्‌के साथ अपना संबंध स्थापित करनेके सिवा, जो कुछ तुम उनके लिये करना चाहते हो उसके अतिरिक्त अन्य किसी चीजमें रुचि मत रखो। बस, वही एक चीज आनंद देनेवाली है।

कलाकी प्रकृति और भवितव्यता

सच्ची कलाका अर्थ है भौतिक जगत्‌में सौंदर्यकी अभिव्यक्ति। पूर्ण रूपसे परिवर्तित एक जगत्‌में, अर्थात्, दिव्य सद्वस्तुको सर्वांगीण रूपसे प्रकट करते हुए कलाको जीवनके अंदर इस दिव्य सौंदर्यको प्रकट करनेवाले और इसकी शिक्षा देनेवाले एक अध्यापकके रूपमें कार्य करना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें, कलाकारको भगवान्‌के साथ

संपर्क स्थापित करनेमें समर्थ होना चाहिये और इस विषयमें अंतः-प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये कि दिव्य सौंदर्यको भौतिक जगत्‌में व्यक्त करनेके लिये कौनसा रूप या कौनसे रूप आवश्यक हैं। उसके साथ-ही-साथ भौतिक रूपमें सच्चे सौंदर्यको प्रकट कर वह एक आदर्श भी सामने रखता है, शिक्षाका एक साधन भी बनता है। कला केवल सौंदर्यका सृजन ही नहीं करती बल्कि सच्चा सौंदर्य पानेके लिये, दिव्य सत्यको प्रकट करनेवाले सार-भूत सौंदर्यको पानेके लिये वह जनताकी रुचिको शिक्षित भी करती है। यही कलाका सच्चा कार्य है। परंतु आजकल जो उसका कार्य है उसमें और इसमें एक महान् अंतर है।

क्रमविकास एक कुंडलाकार गतिका अनुसरण करता है और उस-की साधारण धारामें ही ह्रासका युग आता है। विगत शताब्दिके आरंभसे लेकर उसके मध्यकालतक कला पूर्णतः एक निकृष्ट वस्तु, एक व्यापारिक, निस्तेज और अज्ञानपूर्ण वस्तु बनी रही, ऐसी चीज बनी रही जो अपने सच्चे स्वरूप और कार्यसे बहुत दूर थी। परंतु कलाकी आत्मा मर नहीं सकती; बस हुआ यह कि जब वह विरोध या विद्रोहकी एक गतिके रूपमें ऊपर उठी तब उसने जो रूप चुना वह वैसा ही बुरा था। रुचिकी साधारण निम्नगामी धाराको रोकने-की चेष्टा करती हुई वह दूसरे छोरपर चली गयी, जैसा कि प्रकृति-की सभी गतियोंका स्वभाव होता है। उसका एक रूप था प्रकृतिका अंध अनुकरण, उसकी ओर लोग ध्यान देते भी थे और नहीं भी देते थे। उन दिनों इसे 'फोटोग्राफी कला' के नामसे पुकारा जाता था, जब कि कोई इसकी निंदा करना चाहता था। परंतु अब यह कोई निंदात्मक शब्द नहीं है, क्योंकि फोटोग्राफी एक पूर्ण कलाके रूपमें विकसित हो गयी है। फिर इसे हम वास्तवमें यथार्थवादी कला भी नहीं कह सकते, क्योंकि ऐसे यथार्थवादी चित्र पाये जाते हैं जो बड़ी ही उच्च कोटिके होते हैं। वह कला थी अनुकरणमूलक, कृत्रिम और निर्जीव। अब इस गतिके विरुद्ध प्रतिक्रिया करनेवालोंने

कहा : अब हम भौतिक जीवनके साथ अपना कोई संबंध नहीं रखेंगे, अपनी बाहरी आंखोंसे हम सद्वस्तुको जिस रूपमें देखते हैं अब वह रूप हमारा प्रधान विषय नहीं रहेगा। उसके बदले हम प्राणिक जीवन-को, मानसिक जीवनको अभिव्यक्त करना चाहते हैं। अतएव आया एक बहुत बड़ा दल सुधारकों और विद्रोहियोंका — क्यूबिस्ट (Cubists), स्युररियलिस्ट (Surrealists), फ्यूचरिस्ट (Futurists) इत्यादि लोगोंका — जिन्होंने अपने मस्तिष्कसे कलाका सृजन करनेकी कोशिश की। वे इस सहज सत्यको भूल गये कि कलामें सृजनकी प्रेरणा मस्तिष्कसे नहीं आती, बल्कि हृदयके सौंदर्य-बोधसे आती है। अतएव कला अत्यंत बेहूदा, हास्यास्पद और भयावह जगतोंमें उतर आयी। निस्संदेह हम दो युद्धोंके बाद उस दिशामें और भी आगे बढ़ गये हैं। प्रत्येक युद्धने ही एक ह्रासोन्मुख जगत्को उत्पन्न किया है। और अब तो ऐसा मालूम होता है कि हम अस्तव्यस्तताके एकदम हृदयगुहामें ही पहुंच गये हैं।

शायद इस समय हम लोग इस टेढ़ी धाराके निचले तहमें हैं तथा ऊपर उठनेका समय आ गया है। यह विघटनकी अवस्था एक आवश्यक प्रारंभ है; यदि एक विशेष दृष्टिसे देखा जाय तो यह रानी विक्टोरिया या फ्रांसके द्वितीय साम्राज्यके कालकी, सफलतापूर्ण व्याव-हारिक मध्यवर्गीय युगकी, संकीर्ण तुष्टि और निस्तेज मध्यमावस्थाके, जीवनमें मृत्युके युगकी अवस्थाकी अपेक्षा कहीं बेहतर अवस्था है। जैसा कि मेरा कहना है, प्रगतिकी क्रिया एक टेढ़ी धाराका अनुसरण करती है। एक विशेष कालमें कुछ सुंदर चीजें सुंदर ढंगसे अभि-व्यक्त की जाती हैं। फिर उसके बाद एक काल आता है जो पुरानी चीजोंसे थका होता है, नयी चीजें खोजना और उन्हें नये ढंगसे अभि-व्यक्त करना चाहता है। उदाहरणार्थ, चौदहवें लुईका युग एक ऐसा युग था जिसमें कलात्मक सृजनकी भावनाका प्राधान्य था और वह युग कला तथा जीवनके वास्तविक सौंदर्यकी किसी विशेष धाराकी श्रेष्ठ अभिव्यक्तिका प्रतिनिधि था। फिर सामाजिक विकासकी

धारामें अन्यान्य विचार, दूसरी-दूसरी आवश्यकताएं प्रकट हुईं — व्यावसायिक युगकी भावनाएं और आवश्यकताएं सामने आयीं। अतएव विकासकी वक्रगति नीचेकी ओर उतर आयी। क्योंकि दूसरी कोई चीज कलाके उतने प्रतिकूल नहीं है जितना कि व्यवसाय। कलाके साथ व्यवसायके संयोगका अर्थ है ऐसी चीजको सर्वसाधारणमें प्रचलित करना जो असाधारण है; एक ऐसी चीजको एक साथ सभी मनुष्योंकी पहुंचके भीतर ला रखना जिसे केवल कुछ चुने हुए लोग, श्रेष्ठजन समझते और महत्त्व प्रदान करते हैं। संभवतः यही कारण है कि, चूंकि इसे जगत्में कोई रास्ता नहीं मिलता इसलिये, इन दिनों कला दूसरी दिशाओंमें मुड़ गयी है, मानसिक और प्राणिक विषयोंके क्षेत्रमें, चेतनाके राजपथको छोड़कर तिरछे और अपरिचित मार्गोंपर चली गयी है। परंतु जब अच्छी स्थिति आयेगी, जब वाणिज्यकी भावनाके बदले पृथ्वीपर एक अधिक सुंदर सद्वस्तुका बोध प्रकट होगा तब कलाका पुनर्जन्म होगा और वह अपने सत्य-स्वरूपको प्राप्त होगी। परंतु मालूम होता है कि वह दिन अभी भी बहुत दूर है।

इस ह्रासोन्मुख युगकी कला एक ऐसी चीज है जिसे मैं कुकुरमुत्ता (Mushroom)-जातीय कला कहती हूं। तुम जानते हो कुकुरमुत्ता कैसे उगता है? वह कहीं भी उग जाता है और जिस चीजकी तुम खेती करते हो या जहां तुम खेती करते हो उसका वह कोई अंग नहीं मालूम होता। जरासा उसके विषयमें विचार करो! दीवालपर एक स्थान ऐसा है जो गीला हो गया है और फिर तुम देखते हो कि वह स्थान शीघ्र ही इस पौधेसे भर गया है। तुम्हारा एक पेड़ है जिसे धूप नहीं मिलती, तुम देखते हो कि उसकी जड़ें कुकुरमुत्तोंसे ढक गयी हैं। यह एक प्रकारकी अपने-आप होनेवाली उपज है जिसका उस स्थानसे कोई संपर्क नहीं होता जहां वह उगती है। यह अपने परिपार्श्वका कोई अंग नहीं होता, बल्कि उसमें जुड़ी हुई कोई विजातीय वस्तु होता है। मैं यहां कुकुरमुत्तेके बजाय आकाशवेलि या परोपजीवी पौधों (Parasites) की चर्चा कर

सकती थी : वे दोनों एक ही श्रेणीकी चीजें हैं। क्या तुमने परोपजीवी पौधोंको देखा है ? वे पेड़ोंपर उगते हैं, वे वहीं जमकर बैठ जाते हैं। उनका न तो अपना निजी जीवन होता है और न निजी अंग-प्रत्यंग, वे सीधे पृथ्वीसे अपना भोजन नहीं आहरण करते जैसे कि सभी साधारण पौधे करते हैं; वे दूसरोंके जीवनके सहारे जीते हैं, दूसरोंकी कमाईका उपयोग करते हैं। इसी तरहके परोपजीवी प्राणी भी होते हैं जो दूसरे प्राणियोंके सहारे जीते हैं, उनके परिश्रमसे बढ़ते और लाभ उठाते हैं। परोपजीवी या कुकुरमुत्ते जहां होते हैं वहां रहनेका अधिकार उन्हें नहीं होता — वे तो आक्रमण करनेवाले, जबर्दस्ती घुस आनेवाले हैं और मानों मूर्त्तिमान् विषमता ही हैं।

प्राचीन कालमें, महान् युगोंमें, उदाहरणार्थ, यूनानमें या इटलीके पुनर्जन्मके कालमें, विशेषकर, यूनान और मिस्रमें, लोगोंने जनताके उपयोगके लिये भवनोंका निर्माण किया, स्मारकोंकी रचना की। उन्होंने अपनी कृतियोंको अधिकांशमें अपने देवी-देवताओंको स्थापित करनेके लिये मंदिरों, देवालयों आदिके रूपमें ही बनवाया। जो कुछ उन्होंने अपनी दृष्टिके सामने रखा था वह एक संपूर्ण, पूरी-की-पूरी अखंड वस्तु थी, अपने-आपमें सर्वांगपूर्ण और सुंदर थी। गृहनिर्माण-विद्याका उद्देश्य यही था कि अत्यंत व्यापक और महान् रेखाओंके सामंजस्यको सन्निविष्ट किया जाय : मूर्त्तिनिर्माणविद्या गृहनिर्माणविद्याका एक अंग थी और अभिव्यंजनाके छोटे-मोटे ब्योरोंको जुटाती थी। और फिर चित्रकला भी अभिव्यंजनाको परिपूर्ण करनेके लिये उत्पन्न हुई : परंतु समूची वस्तु एक सुसंबद्ध एकत्वमें एक साथ गृहीत थी और वह एकरस एकत्व ही था स्वयं वह स्मारक। मूर्त्तिनिर्माण-विद्या स्मारकके लिये थी, चित्रकला स्मारकके लिये थी; यह बात नहीं थी कि इनमेंसे प्रत्येक दूसरेसे अलग हो और स्वयं अपने लिये विद्यमान हो और किसीको यह पता ही न हो कि वह वहां किसलिये है। भारतमें, जब कोई मंदिर बनवाया जाता था तब जो कुछ बनाना अभिप्रेत होता था वह एक सर्वांगपूर्ण रचना होता था, उसके

सभी भाग एक उद्देश्यको चरितार्थ करनेके लिये, अपनी पूजाके एकमात्र विषय भगवान्‌के हेतु एक सुंदर बाना तैयार करनेके लिये युक्त होते थे। कलाके सभी महान् युग इसी प्रकारके थे। परंतु आधुनिक कालमें, गत शताब्दिके पिछले हिस्सेमें, कला व्यापारकी एक वस्तु बन गयी। चित्रकारी इसलिये की जाती थी कि वह बिक जाय। तुम अपने चित्र तैयार करते हो, प्रत्येकको एक चौखटेमें बंधा लेते हो और उन्हें पास-पास रख देते हो या उन्हें एक साथ रख देते हो, बिना अधिक सोचे-विचारे उन्हें एकत्र स्तूपकार रख देते हो। यही बात मूर्त्तिनिर्माणविद्याके विषयमें भी कही जा सकती है। तुम एक मूर्त्ति बनाते हो और उसे परिपार्श्वके साथ किसी प्रकारका भी कोई संबंध रखे बिना चाहे कहीं भी स्थापित कर देते हो। वह बराबर ही अपनी योजनाके अंदर, कुकुरमुत्ते या आकाशबेलिकी तरह, कोई विदेशी, भिन्न वस्तु होती है। वह मूर्त्ति स्वयं अपने-आपमें संभवतः बिलकुल कुत्सित न भी हो, पर वह वहां उपयुक्त नहीं होती, वह वहांकी पूरी योजनाका कोई अंग नहीं होती। हम आज कलाका प्रदर्शन करते हैं। निश्चय ही यह प्रदर्शनवाद ही है, यह चातुरी, प्रतिभा, कौशल, दक्षताका दिखावा है। आज स्थापत्यके किसी नमूनेमें कोई सजीव शक्ति नहीं उतरती जैसे कि पुराने जमानेमें उतरा करती थी। आजकल वह किसी अभीप्साकी अभिव्यक्ति नहीं होता, किसी ऐसी चीजकी अभिव्यक्ति नहीं होता जो हमारी आत्माको ऊंचा उठाता है और न वह उन भगवान्‌के ही ऐश्वर्यकी अभिव्यक्ति होता है जिनके आवासके रूपमें उसकी रचना की जाती है। तुम जहां-तहां, अनाप-शनाप, अथवा किसी तरह एक-दूसरेसे संवद्ध मकान बनाते हो, पर वहां कोई ऐसी परिचालिका भावना नहीं होती जो उनमें समतोलता उत्पन्न करे, जहां वे मकान खड़े होते हैं उस पास-पड़ोसके साथ उनका कोई संबंध नहीं होता। जब तुम मकानमें घुसते हो तो वही बात वहां भी होती है। एक चित्र यहां लगा हुआ है, एक मूर्त्ति वहां खड़ी है, कुछ कला-कृतियां

एक कोनेमें हैं तो कुछ दूसरी एक दूसरे कोनेमें। हां, यह एक प्रदर्शनी, एक अजायबघर, एक बहुरूपदर्शक यंत्रका संग्रह होता है। जिसमें वास्तवमें संवेदनशील कलात्मक रुचि है उसे इसके द्वारा कष्ट ही पहुंचता है।

मैं यह नहीं कहती कि अजायबघर जरूरी या उपयोगी नहीं है। यह शिक्षाका एक अच्छा साधन है, अर्थात् यह जाननेका साधन है कि अन्य लोगोंने या अन्य युगोंने क्या किया था। यह वस्तुओंका ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करनेमें सहायक होता है। परंतु यह कलापूर्ण होनेकी अवस्थासे बहुत दूर होता है। अजायबघर वह स्थान नहीं है जहां कला अपने सर्वोत्तम रूपमें या अपने सच्चे रूपमें अभिव्यक्त हो सके। एक कला ऐसी है जो पृथक्, भिन्न, विरोधी वस्तुओंमें समानता लाने, उन्हें एकत्र जोड़नेकी चेष्टा करती है। उसे प्रसाधन कला (Decorative Art) कहते हैं। और जितने अंशमें यह कला सफल हुई है उतने अंशमें हम कह सकते हैं कि आजकलके दिनोंमें भी हम सच्ची कलाकी ओर एक पग आगे बढ़े हैं।

यहां भारतमें चीजें थोड़ी भिन्न हैं और होनी चाहियें! आधुनिक यूरोपीय आक्रमणके बावजूद भी और कुछ दिशाओंमें थोड़ा पतन होनेपर भी, — मैं उस चीजका हवाला दे सकती हूं जिसे श्रीअरविन्द रविवर्माका मध्यवर्त्ती काल कहते हैं — भारतका हृदय अंगरेजी या यूरोपीय रंगसे नहीं रंगा है। कलकत्तेकी कला-शाखा उसका एक चिह्न है — यद्यपि उसका प्रयास अपेक्षाकृत छोटे दायरेमें ही सीमित है — तथापि यह इस बातका सूचक है कि भारतकी कलासंबंधी रुचि, आधुनिक शिक्षाके बावजूद भी, उस चीजकी ओर मुड़ रही है जो उसकी संस्कृति और सभ्यताकी मूल और स्थायी वस्तु है। अभी भी तुम्हारे सामने, तुम्हारी पहुंचके भीतर, पुराने मंदिर, पुरानी चित्रकारियां मौजूद हैं जो तुम्हें यह सिखा सकती हैं कि कलात्मक रचनाका उद्देश्य होता है एक विश्वासको अभिव्यक्त करना, जो तुम्हें सर्वांगीणता और सुसंगठनका बोध प्रदान कर सकती हैं। तुम्हें इस

संबंधमें एक दूसरी बातको भी ध्यानमें रखना चाहिये जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन सब चित्रकारियोंपर, इन सब मूर्त्तियोंपर जो गुफाओं और मंदिरोंमें पायी जाती हैं, किसीके हस्ताक्षर नहीं हैं। उनका निर्माण नाम कमानेकी भावनासे नहीं किया गया था। आज तुम जो कुछ करते हो उन सबपर अपने नामकी छाप लगा देते हो, बड़े ऊंचे स्वरमें पत्रोंमें उस कार्यकी घोषणा कर देते हो, जिसमें कि उस बातको लोग भूल न जायं। उन दिनों कलाकारोंने वह कार्य किया जिसे उन्हें करना था, उन्होंने इस बातकी कोई परवाह न की कि उनके बादके लोग उनका नाम याद करेंगे या नहीं। उन्होंने उच्चतर सौंदर्य अभिव्यक्त करनेकी अभीप्साके वशीभूत होकर अपना कार्य किया, बल्कि सबसे अधिक इस विचारके वश होकर कार्य किया कि हम जिस देवताकी उपासना करते हैं उसके उपयुक्त उसका एक आवास तैयार करें। यूरोपमें मध्य-युगके चर्चोंमें इसी भावनासे चीजें तैयार की गयी थीं। वहां भी उन दिनों सभी कला-कृतियां गुमनाम हुआ करती थीं और उनपर रचयिताके नाम नहीं होते थे। अगर किसी नामको सुरक्षित रखा भी गया तो वह कम या अधिक संयोगवश ही हुआ।

जो भी हो, आजका व्यवसायवाद भी, भद्दा होनेपर भी, अपनी एक उपयोगिता रखता है। व्यवसायवादका अर्थ है जगत्के सभी भागोंको एक साथ जोड़ देना। यह पूर्व और पश्चिमके बीच विद्यमान विभेदको दूर करता है, पूर्वको पश्चिमके निकट और पश्चिमको पूर्वके निकट ले आता है। माल-असबाबके लेन-देनके साथ-साथ विचारोंका भी लेन-देन और यहांतक कि आदतों और रीति-रिवाजोंका भी लेन-देन होता है। प्राचीन कालमें रोमने यूनानको जीता और अपनी विजयके द्वारा वह स्वयं भी यूनानकी संस्कृति और सभ्यतासे जीत लिया गया। यही बात संभवतः आज एक बहुत बड़े पैमानेपर और बहुत अधिक तेजीसे घटित हो रही है। एक दिन जापान अमेरिकन पद्धतिसे अपनेको शिक्षित कर रहा था ; अब चूंकि

अमेरिकाने भौतिक रूपमें जापानको जीत लिया है इसलिये वह जापान-की आत्माके द्वारा जीता जा रहा है; यहांतक कि अमेरिकामें तैयार हुई चीजोंमें भी तुम्हें किसी-न-किसी रूपमें जापानका प्रभाव दिखायी देता है।

संगीत — उसका मूल स्रोत और स्वभाव

तुम्हें याद रखना चाहिये कि अन्य किसी भी कलाकी तरह संगीत भी किसी चीजको — किसी विचार, किसी हृद्‌गत अनुभव, किसी भावावेग, किसी विशेष अभीप्सा इत्यादिको — प्रकट करनेके लिये है। एक ऐसा लोक ही है जहां ये सभी क्रियाएं रहती हैं और जहांसे इन्हें एक संगीतके रूपमें नीचे उतारा जाता है। एक अच्छा रचयिता किसी अंतःप्रेरणाकी सहायतासे अच्छा संगीत उत्पन्न कर सकता है और तब उसे एक अच्छा संगीतज्ञ कहा जाता है। एक बुरे संगीतज्ञमें भी एक अच्छी अंतःप्रेरणा हो सकती है, वह उच्चतर लोककी किसी चीजको ग्रहण कर सकता है, पर उसमें संगीतज्ञकी कोई क्षमता न होनेके कारण वह केवल ऐसी ही चीज उत्पन्न करेगा जो बहुत मामूली, बहुत साधारण और अप्रिय होती है। परंतु, तुम यदि परेकी ओर चले जाओ, ठीक उस पार उस स्थानकी ओर चले जाओ जहां संगीतका उद्‌गम है, पीछे विद्यमान भावना, भावावेग, अंतःप्रेरणातक चले जाओ तो फिर तुम इन चीजोंका रस ले सकते हो और संगीतका आकार तुम्हें बाधा नहीं देगा। फिर भी संगीत-का यह आकार जो कुछ परे है या आकारके परे जो कुछ है उसके साथ जोड़ा जा सकता है; क्योंकि उसी चीजने मूलतः संगीतज्ञको रचना करनेकी प्रेरणा प्रदान की थी। निःसंदेह ऐसे उदाहरण हैं जिनमें कोई अंतःप्रेरणा विद्यमान नहीं है, जहांपर संगीतका उद्‌गम केवल एक प्रकारकी स्वरकी कारीगरी होता है जो किसी भी हालतमें सर्वदा आकर्षक नहीं होती। मैं यहां जो कुछ कहना चाहती हूं वह

यह है कि एक ऐसी आंतरिक अवस्था होती है जिसमें बाहरी आकार अत्यंत प्रधान वस्तु नहीं होता: बस वहीं होता है संगीतका मूल-स्रोत, अंतःप्रेरणा जो कि परे रहती है। यह बात तो मामूली ही है, पर बहुधा लोग यह भूल जाते हैं कि वास्तवमें स्वर संगीतका निर्माण नहीं करता, स्वर तो किसी चीजको अभिव्यक्त करनेके लिये होता है।

एक ऐसा संगीत है जो बिलकुल यांत्रिक होता है और उसमें कोई अंतःप्रेरणा नहीं होती। ऐसे संगीतज्ञ होते हैं जो बड़ी दक्षताके साथ बाजा बजाते हैं, अर्थात् उन्हें संगीत-कलापर पूरा अधिकार होता है और वे अत्यंत जटिल और तीव्र गतियोंको निर्दोष रूपमें प्रकट करते हैं। वह संभवतः संगीत तो होता है, पर वह कुछ भी अभि-व्यक्त नहीं करता; वह बस एक मशीनके जैसा होता है। वह चातुरीपूर्ण होता है, उसमें बहुत कौशल होता है, पर वह आकर्षण-हीन, आत्मासे शून्य होता है। केवल संगीतमें ही नहीं, वरन् सभी मानवीय सृष्टियोंमें, जो कुछ मनुष्य करता है उस सबमें भी, मैं दुहरा दूं कि, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज होती है पीछेकी ओर विद्यमान अंतःप्रेरणा। अतएव स्वभावतः ही यह आशा की जाती है कि कार्यान्वितिका अंतःप्रेरणाके साथ पूर्ण साम्य हो; परंतु वास्तवमें अच्छे रूपमें व्यक्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्यके पास व्यक्त करनेके लिये सचमुचमें महान् चीजें भी हों। यह नहीं कहा जाता कि कलाका ज्ञान आवश्यक नहीं है; बल्कि इसके विरुद्ध मनुष्यको कलाका बहुत अच्छा ज्ञान होना चाहिये; यहांतक कि वह ज्ञान अनि-वार्य है। बस इतनी ही बात है कि वह एकमात्र आवश्यक चीज नहीं है, और न उतनी महत्त्वपूर्ण ही है जितनी कि अंतःप्रेरणा। क्यों-कि संगीतका मूल गुण तो आता है उस प्रदेशसे जहां उसका मूल उत्स है।

उद्गम या मूल स्रोतका अर्थ है वह वस्तु जिसके बिना किसी चीजका अस्तित्व ही न रहे। कोई भी चीज स्थूल रूपमें तबतक

पृथ्वीपर प्रकट नहीं हो सकती जबतक कि उसका मूल किसी उच्चतर सत्यमें न हो। इस तरह स्थूल सत्ताका उद्‌गम और उसकी प्रेरणा प्राण-लोकमें होती है, फिर प्राणमय लोकका उद्‌गम और प्रेरणा उसके पीछे मनोमय लोकमें, मनोमय लोकका मानसोत्तर लोकमें है। अगर विश्व कोई चपटी चीज होता, अपने अंदर ही उसका उद्‌गम होता तो शीघ्र ही उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता। (संभवतः यही विज्ञानका तात्पर्य होता है जब वह यह मानता है कि शाश्वत गतिका होना असंभव है।) चूंकि एक उच्चतर स्रोत है जो इसे प्रेरित करता है, एक गुप्त शक्ति है जो इसे अभिव्यक्तिकी ओर ले जाती है, इसीलिये विश्व-जीवन चलता है: अन्यथा यह बहुत शीघ्र समाप्त हो जाता।

संगीतके मूलमें एक क्रम-धारा है। उदाहरणार्थ, संगीतकी एक पूरी श्रेणी ऐसी है जो उच्चतर प्राणमय लोकसे आती है; वह बड़ी ही मोहिनी होती है, शायद कुछ भद्दी भी होती है, कुछ ऐसी चीज होती है जो तुम्हारी स्नायुओंके चारों ओर मानो लिपट जाती है और उन्हें ऐंठ देती है। वह तुम्हारी कमरके आसपास कहीं—नाभि-केंद्रमें—तुम्हें पकड़ती है और एक तरहसे तुम्हें अभिभूत कर डालती है। जिस तरह एक प्राणिक संगीत होता है उसी तरह एक दूसरा संगीत होता है जिसे चैत्य संगीत कह सकते हैं और जो एक-दम एक दूसरे ही उद्‌गमसे आता है; फिर एक और संगीत है जिसका स्रोत आध्यात्मिक होता है। अपने निजी क्षेत्रमें यह उच्चतर संगीत अत्यंत सुंदर होता है, यह तुम्हें गहराईमें पकड़ता है और तुम्हें कहीं अन्यत्र उठा ले जाता है। परंतु तुम्हें यदि पूर्णताके साथ इसे अभिव्यक्त करना हो—इसे कार्यान्वित करना हो—तो तुम्हें इस संगीतको भी प्राणमय स्तरके भीतरसे उतार लाना होगा। तुम्हारा संगीत उच्च लोकसे आनेपर भी कार्यान्वितिमें पूर्ण रूपसे रूखा साबित हो सकता है यदि तुम्हारे पास प्राणगत स्पंदनोंकी वह एकमात्र तीव्रता न हो जो इसे अपना बल और सौंदर्य प्रदान कर सकती है। मैं

ऐसे लोगोंको जानती हूं जिन्हें बड़ी ऊंची प्रेरणा प्राप्त थी, पर जिनका संगीत एकदम साधारण ढंगका उतरा, क्योंकि उनका प्राण चलायमान नहीं हुआ। उनकी आध्यात्मिक साधनाने उनके प्राणको प्रायः पूर्ण रूपसे निद्रित बना दिया था; हां, उनका प्राण सच्चे अर्थमें 'निद्रित' था और उसने बिलकुल ही कार्य नहीं किया। अतएव उनका संगीत सीधे भौतिक स्तरमें चला आया। यदि तुम पीछे जा सकते और मूल स्रोतको पकड़ सकते तो तुम देख सकते कि यद्यपि बाह्य रूपमें वह शक्तिशाली और प्रभावशाली नहीं था तो भी उसमें कोई चीज वास्तवमें अद्‌भुत थी। जो कुछ उतरा वह केवल एक क्षीण तुच्छ स्वर था, बड़ा हलका, सुरसंगतिकी उस शक्तिका कुछ भी अंश उसमें नहीं था जो प्राणमय शक्तिको क्रियाशील बनानेपर उत्पन्न होती है। प्राणमय लोकसे संबंधित स्पंदनकी इस पूरी शक्तिको यदि कोई उच्चतर उत्ससे आनेवाले संगीतमें प्रयुक्त कर सके तो हमें एक प्रतिभाशाली व्यक्तिका संगीत प्राप्त होगा। सचमुचमें संगीतके लिये और समस्त कलात्मक सृजनके लिये, वास्तवमें साहित्य, काव्य, चित्रकारी आदि सबके लिये एक मध्यस्थकी आवश्यकता है। इन क्षेत्रोंमें मनुष्य जो कुछ करता है उसका यथार्थ मूल्य वास्तवमें अंतःप्रेरणाके उद्‌गमस्थानपर निर्भर करता है, उस लोक या उच्चतापर निर्भर करता है जहां मनुष्य निवास करता है। परंतु कार्यान्वितिका मूल्य प्राणकी उस शक्तिपर निर्भर करता है जो अंतःप्रेरणाको अभिव्यक्त करती है। एक पूर्ण प्रतिभाशाली व्यक्तिके लिये इन दोनोंकी आवश्यकता है। परंतु यह मिश्रण बहुत कम देखनेमें आता है, साधारणतया इनमेंसे कोई एक ही रहता है, और अधिकांश क्षेत्रोंमें प्राण ही होता है जो प्रबल होता और आच्छादित कर रखता है।

जब वहां केवल प्राण ही होता है तब तुम वहां होटल या सिनेमाका संगीत पाते हो। वह असाधारण रूपसे चातुरीपूर्ण होता है और उसके साथ-ही-साथ असाधारण रूपमें सामान्य होता है, यहांतक कि भद्दा भी होता है। परंतु वह चूंकि इतना कौशलपूर्ण होता है इस-

लिये वह तुम्हारे मस्तिष्कको अधिकृत कर लेता है, तुम्हारी स्मृतिमें सदा बना रहता है, तुम्हारी नसोंमें झनझनाता रहता है; उसके प्रभावसे छुटकारा पाना बड़ा कठिन हो जाता है, ठीक इसी कारणसे कि वह इतने अच्छे ढंगसे, इतनी चतुराईके साथ व्यक्त किया जाता है। इसे प्राणमय स्पंदनोंके द्वारा प्राणिक रूप दिया गया होता है, परंतु जो कुछ उसके पीछे होता है वह, कहना न होगा कि, बहुत अच्छा नहीं होता। अब कल्पना करो कि अभिव्यंजनाकी वही प्राण-शक्ति ऊपरसे आनेवाली अंतःप्रेरणाके साथ युक्त होती है, मान लो कि सर्वोच्च संभवनीय अंतःप्रेरणाके साथ युक्त होती है जब कि समूचा स्वर्ग खुल गया-सा प्रतीत होता है, तब वास्तवमें वही संगीत होता है! सेजार फ्रैंक (Cesar Frank) की कुछ चीजें, बीथोवेन (Beethoven) की कुछ चीजें, बाक (Bach) की कुछ चीजें, कुछ दूसरे लोगोंकी कुछ चीजें इस श्रेष्ठतातक पहुंची हुई हैं। परंतु आखिरकार यह केवल एक क्षण ही रहता है, यह एक मुहूर्त्तके लिये आता है और टिकता नहीं। कोई भी ऐसा कलाकार नहीं जिसकी समूची कृति ऐसी ही ऊंचाईपर कार्यान्वित की गयी हो। अंतःप्रेरणा बिजलीकी एक झलकके समान आती है, बहुधा यह बस उतनी ही देर ठहरती है जो उसे कुछ झपटोंमें पकड़ने और ग्रहण करनेके लिये पर्याप्त होती है।

जब तुम्हारी चेतना एकदम सावधान और एकाग्र होती है तब इसी अनुभूतिसे मिलती-जुलती कुछ चीज तुम्हारे अंदर घटित होती है; तुम एकाएक अनुभव करते हो कि तुम खूब ऊपरकी ओर उठाये जा रहे हो, तुम्हारी सभी शक्तियां एकत्र कर ली गयी हैं और ऊपर उठा ली गयी हैं, मानो तुम्हारा सिर खुल गया है और तुम उन्मुक्त हवामें, असाधारण ऊंचाइयों और भव्य ज्योतियोंके सुदूर प्रदेशोंमें फेंक दिये गये हो। यह अनुभूति कुछ सेकंडोंमें तुम्हें वह चीज दे देती है जिसे साधारण अवस्थामें मनुष्य वर्षों कठिन साधना करनेके बाद ही प्राप्त कर सकता है। केवल अनुभूतिके तुरत बाद ही तुम नीचे

पृथ्वीपर गिर जाते हो, क्योंकि अभी तुम्हारे अंदर आधारका निर्माण नहीं हुआ है; तुम यह भी संदेह करना आरंभ कर देते हो कि आया तुम्हें सचमुच वह अनुभव हुआ भी था या नहीं। फिर भी चेतना तैयार की जा चुकी है, कोई निश्चित कार्य किया जा चुका है और वह बना रहता है।

भारतीय और यूरोपीय संगीत

विभेद मूल स्रोत और अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टियोंसे है और एक उलटे ही रूपमें है। यूरोपीय संगीतमें बहुत ऊंची — आध्यात्मिक — प्रेरणा बहुत कम होती है। चैत्य स्रोत भी बहुत विरल ही होता है। पर कहीं यदि होता है तो वह बहुत ऊंचा आध्यात्मिक स्रोत होता है, अन्यथा प्राण ही उसका मूल उद्‌गम होता है। स्वभावतः ही कुछ अपवादोंको छोड़कर अभिव्यंजना वहां बराबर ही रहती है; पर वह प्रायः सर्वदा ही प्राणिक होती है, क्योंकि उसका उत्स अधिकांश समय विशुद्ध प्राण-जगत् होता है। कभी-कभी, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, वह ऊपरसे आता है और तब वह यथार्थमें अद्‌भुत होता है। कभी-कभी, अधिक विरल रूपमें, वह चैत्य होता है; इसका कुछ अंश धार्मिक संगीतमें विद्यमान है, पर यह बहुत अधिक नहीं है। परंतु इसके विपरीत भारतीय संगीत प्रायः बराबर ही, अर्थात् जब हम अच्छे संगीतज्ञोंसे मिलते हैं, चैत्य स्रोतसे आता है, जैसे, रागोंका स्रोत है। यह ऊंचाइयोंके शिखरसे नहीं आता, बल्कि इसका मूल आंतरिक और निगूढ़ है। परंतु बहुत कम प्रसंगोंमें इसे एक पर्याप्त प्राणिक शरीर प्राप्त होता है। मैंने भारतीय संगीतको काफी मात्रामें, निस्संदेह बहुत पर्याप्त मात्रामें सुना है। मैंने मुश्किलसे किसी आदमीको देखा जिसमें महान् प्राण-शक्ति हो, चार-पांच बारसे अधिक कभी नहीं देखा। परंतु उस संगीतको मैंने बहुत अधिक बार चैत्य प्रेरणाके साथ व्यक्त होते हुए सुना है। यह एक ऐसा

संगीत है जो सीधे अंतरसे निकलकर भौतिक रूपमें रूपांतरित हो जाता है। इसे सुननेके लिये तुम्हें एकाग्र होना चाहिये, क्योंकि यह बड़ी पतली, बहुत बारीक और सूक्ष्म वस्तु होती है, अपने प्रबल और सघन झंकारोंके साथ आनेवाले प्राणिक स्पंदनोंका इसमें कुछ भी अंश नहीं होता। तुम इसमें फिसल जा सकते हो, प्रवाहमें अपनेको बह जाने दे सकते हो और चैत्य मूलमें प्रविष्ट हो सकते हो। इसका ऐसा ही प्रभाव होता है, यह एक नशेकी चीजकी तरह काम करता है, एक ऐसी चीज होता है जो तुम्हें एक प्रकारकी समाधिमें पहुंचा देती है। यदि तुम अच्छी तरह सुनो और एकाग्र रहो और अपने-आपको छोड़ दो तो तुम धीरे-धीरे बह जाओगे और डूब जाओगे, चैत्य चेतनामें डूब जाओगे; पर तुम यदि बाहरी चेतनामें ही बने रहो तो, उस संगीतमें इतनी पतली धारा अभिव्यक्त होती है कि प्राण कोई भी प्रत्युत्तर नहीं देता और उसे यह संगीत अत्यंत बेमतलब और नीरस लगता है। परंतु वहां यदि चैत्य स्पंदनके साथ-साथ प्राणिक शक्ति भी विद्यमान हो और उस संगीतको व्यक्त करे तो उसका परिणाम निश्चय ही बड़ा रोचक होगा।

मैं इस प्रकारका संगीत पसंद करती हूं जिसमें एक तान होता है, केवल एक ही तान नानाभांति चलता और क्रमशः विकसित होता रहता है: निरंतर उसी एक तानको अनगिनत स्वर-तालोंमें प्रकट किया जाता है, स्वर-ताल डालियों और टहनियोंकी तरह फैल जाते हैं और फिर उसी मूल आधार-रूप तानमें वापस आ जाते हैं। यूरोप-में भी इस प्रकारकी एक चीज थी जिसकी पद्धति इससे एकदम भिन्न दूसरी तरहकी थी। बाक (Bach) में यह थी, मोजार (Mozart) में भी थी। आधुनिक कालमें कुछ संगीतज्ञोंने — जैसे, दब्यूस्सी (Debussy), राभल (Raval) तथा रूसी बोरोदीन (Borodine) तथा कुछ अन्य लोगोंने — इसके कुछ अंशको पकड़ा है। तुम कुछ स्वरोंको ले लेते हो और उनमें एक विशेष संबंध स्थापित कर लेते हो तथा उसी योजनाके सहारे नानाविध स्वर-तालोंको, प्रायः असंख्य-

अनंत प्रकारके स्वर-तालोंको प्रकट करते हो। यह एक अद्भुत संगीत होता है; यह तुम्हें भीतर गहराईमें ले जाता है, और यदि तुम तैयार होओ तो, तुम्हें चैत्य पुरुषकी चेतना प्रदान करता है, ऐसी चीज देता है जो तुम्हें बाहरी भौतिक चेतनासे पीछे खींच लाती है और तुम्हें भीतर कहीं अन्यत्र ले जाकर किसी चीजके साथ जोड़ देती है।

विशेषज्ञ होना

तुम्हें अपने मनको बढ़ाना चाहिये, विशाल और समृद्ध बनाना चाहिये। उसे विचारों और भावनाओंसे भर देना चाहिये। तुम जो कुछ निरीक्षण और अध्ययन करते हो उसके सभी परिणामोंका उसमें संग्रह होना चाहिये। उसे 'दरिद्र मन' नहीं होना चाहिये, कहनेका तात्पर्य, उसे ऐसा मन नहीं होना चाहिये जिसमें न बहुत अधिक विचार हों और न युक्ति पेश करने और तर्क-वितर्क करनेकी क्षमता ही हो। तुम्हारा मन बहुतसी अलग-अलग चीजोंका विचार करने, नाना प्रकारके ज्ञानोंको एकत्र करने, एक ही समस्यापर महज एक ही धारा या पथका अनुसरण न कर अनेक भिन्न-भिन्न पक्षोंसे विचार करनेमें समर्थ होना चाहिये; इसे बहुत-कुछ जापानी पंखेके समान होना चाहिये जो सभी दिशाओंमें पूरे-पूरे चक्कर देता है।

तुम्हें, उदाहरणार्थ, स्कूलमें बहुतसे विषय सीखने हैं। अच्छा, जितने विषयोंको सीखना संभव हो उतने विषयोंको तुम सीखो। अगर तुम घरपर पढ़ते हो तो जितने विभिन्न विषयोंको पढ़ना संभव हो उतने विषयोंको पढ़ो। मैं जानती हूं कि साधारणतया तुम्हें एक दूसरे ही तरीकेका अनुसरण करनेको कहा जाता है। तुम्हें सलाह दी जाती है कि तुम्हें यथासंभव कम-से-कम विषय लेने चाहियें और उन्हींमें विशेषज्ञ होना चाहिये। हां, यही साधारण आदर्श है: विशेषज्ञ होना, एक विषयमें पारंगत होना। यदि तुम एक अच्छा

दार्शनिक होना चाहते हो तो केवल दर्शन-शास्त्र पढ़ो; यदि तुम अच्छा रासायनिक होना चाहो तो केवल रसायन-शास्त्रका अध्ययन करो; और यहांतक कि तुम्हें दर्शन या रसायन-शास्त्रमें केवल एक ही समस्या या प्रश्नपर पूरा ध्यान एकाग्र करना चाहिये। खेल-कूदमें भी तुमसे वही बात करनेको कही जाती है। बस, एक खेलको चुन लो और केवल उसीपर अपना ध्यान जमाओ। यदि तुम टेनिसके अच्छे खिलाड़ी वनना चाहते हो तो बस टेनिसका ही चिंतन करो। परंतु मेरा मत वैसा नहीं है। मेरा अनुभव दूसरे प्रकारका है। मेरा विश्वास है कि मनुष्यमें कुछ साधारण क्षमताएं होती हैं और उसे विशेषज्ञ होनेकी अपेक्षा कहीं अधिक उन्हें प्राप्त करना और विकसित करना चाहिये। निःसंदेह, यदि तुम्हारे अंदर श्रीमान् क्यूरी या श्रीमती क्यूरी (Curie)— जिन्होंने एक विशेष वस्तुको खोज निकालना, एक विशिष्ट प्रकारका नया रहस्य आविष्कृत करना चाहा था — बननेकी महत्त्वाकांक्षा हो तो फिर तुम्हें एक ही उद्दिष्ट वस्तु-पर ध्यान एकाग्र करना होगा। परंतु फिर भी, एक बार जब वह उद्देश्य सिद्ध हो जाता है तव तुम दूसरी चीजोंकी ओर बहुत आसानी-से मुड़ सकते हो। इसके अलावा, एकमुखी खोजमें संलग्न होनेपर अन्य खोजोंमें रस लेनेके अवसर और सुविधाएं प्राप्त करना कोई असंभव बात नहीं है।

अपने बचपनसे मैं इसी शिक्षाको सुनती आ रही हूं; मैं समझती हूं कि यह शिक्षा हमारे बाप-दादों और परदादोंके युगमें भी दी जाती थी, यही शिक्षा कि तुम यदि किसी चीजमें सफल होना चाहते हो तो तुम्हें अन्य सभी विषयोंको छोड़कर बस उसी एक विषयको सीखना चाहिये। मुझे बहुत अधिक डांटा-फटकारा जाता था, क्योंकि मैं एक ही साथ बहुतसी अलग-अलग चीजोंमें लगी रहती थी। मुझ-से कहा जाता था कि तुम अंतमें किसी कामके योग्य न होगी। मैं पढ़ा करती थी, चित्र आंका करती थी, संगीतका अभ्यास किया करती थी और अन्यान्य बहुतेरी चीजें किया करती थी। मुझे

बार-बार चेतावनी दी जाती थी कि यदि तुम अपने रास्ते चलोगी तो तुम्हारे चित्र किसी कामके नहीं होंगे, तुम्हारा संगीत बेकार होगा, तुम्हारा अध्ययन अपूर्ण और दूषित रह जायगा। संभवतः बात सच्ची थी; परंतु मैंने देखा कि मेरे रास्तेके भी कुछ लाभ हैं— ठीक वे ही लाभ जिनकी चर्चा मैं शुरूमें ही कर रही थी, अर्थात् यह मन और चेतनाको विस्तारित करता और समृद्ध बनाता है, उन्हें कोमल और नमनीय बनाता है, उन्हें एक ऐसी स्वाभाविक शक्ति देता है जिससे वे अपने सामने आनेवाली किसी भी नयी चीजको समझ सकते और उसके साथ उचित कार्रवाई कर सकते हैं। परंतु मैंने यदि यह चाहा होता कि मैं प्रथम श्रेणीकी एक वादक बनूं और किसी 'कंसर्ट' (सम्मिलित वाद्य-संगीत) में बाजा बजाऊं तब निश्चय ही मुझे अपने-आपको सीमित करके रखना होता। अथवा यदि चित्र-कारीमें मेरा उद्देश्य इस युगकी कोई एक महान् कलाकार बनना होता तो मैंने केवल वही कार्य किया होता, अन्य कोई कार्य मैं न करती। इस स्थितिको हम बहुत अच्छी तरह समझते हैं, पर यह केवल एक दृष्टिकोण है। मैं नहीं समझती कि मुझे सबसे बड़ा संगीतज्ञ या सबसे बड़ा चित्रकार ही क्यों बनना चाहिये। यह तो मुझे मिथ्या अहंकारके सिवा और कुछ भी प्रतीत नहीं होता।

परंतु मनुष्यमें अपने-आप होनेवाली एक अत्यंत स्वाभाविक वृत्ति यह है कि वह एक प्रकारकी समतोलता बनाये रखनेके लिये एक कामसे दूसरे काममें चला जाता है। इस परिवर्तनका अर्थ विश्राम भी होता है। हमने बराबर ही सुना है कि महान् कलाकार या विद्वान् विश्राम चाहते हैं और उन्हें इसकी बड़ी आवश्यकता होती है। उन्हें अपनी क्रियामें परिवर्तन करनेसे यह विश्राम प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, इंग्रेस (Ingres) चित्रकार थे; चित्रकारी ही उनका स्वाभाविक और प्रधान काम थी। परंतु जब कभी उन्हें समय मिलता तब वह वेहला लेकर बैठ जाते। विचित्र बात है कि उन्हें अपनी चित्रकारीसे भी कहीं अधिक अपने वेहलेमें आनंद आता।

वह संगीतमें बहुत पारंगत नहीं थे, परंतु वह उसमें बहुत अधिक आनंद पाते। वह चित्रकलामें काफी पारंगत थे, परंतु उसमें उन्हें कम रस मिलता था। परंतु असली बात यह थी कि उन्हें एक स्थायी स्थिति या समतोलताकी आवश्यकता होती थी। महज एक चीजपर एकाग्र होना बहुत आवश्यक है, मैं कह चुकी हूं, यदि कोई एक सुनिश्चित और विशिष्ट फल प्राप्त करना चाहे; पर हम एक दूसरी धाराका भी अनुसरण कर सकते हैं जो अधिक सूक्ष्म, अधिक व्यापक और पूर्ण होती है। स्वभावतः ही कहीं-न-कहीं तुम्हारी व्यापकताकी एक भौतिक सीमा है; क्योंकि भौतिक स्तरपर तुम काल और देशकी दृष्टिसे सीमित हो; और यह भी सही है कि महान् चीजोंको प्राप्त करना तबतक कठिन होता है जबतक कि उनके लिये विशेष रूपसे एकाग्र न हुआ जाय। परंतु तुम यदि कोई उच्चतर और गभीरतर जीवन यापन करना चाहो तो तुम उन क्षमताओंपर अपना अधिकार जमा सकते हो जो सामान्य चेतनासे संबंधित प्रतिबंध और सीमा-बद्धताकी पद्धतियोंसे प्राप्त होनेवाली क्षमताओंसे बहुत अधिक महान् होती हैं। अपनी सीमाओंसे छुटकारा पानेसे, यथार्थ प्रवीणताकी दृष्टिसे न भी सही, कम-से-कम आध्यात्मिक उपलब्धिकी दृष्टिसे, बहुत अधिक लाभ प्राप्त होता है।

२

सृजनकारी विचार

मनुष्यका विचार सर्वदा मानसिक जगत्में रूपोंका निर्माण करता है। यह एक सृष्टि करनेवाली शक्ति है। तुम निरंतर विचारमय आकारोंकी सृष्टि कर रहे हो और उन्हें अपने चारों ओरके वातावरण-में फैला रहे हो। वे आकार अपना काम करनेके लिये बाहर निकल जाया करते हैं। तुम स्वयं भी बराबर ऐसी रचनाओंसे घिरे रहते हो। निःसंदेह, कुछ लोग ऐसे होते हैं जो स्पष्ट रूपमें विचार नहीं कर सकते; वे अपने चारों ओर केवल एक प्रकारका भंवर उत्पन्न करते हैं। परंतु जो लोग स्पष्ट और प्रबल रूपमें विचार करते हैं वे विचारमय रूपोंका सृजन करते हैं जो अपना कार्य पूरा करनेके लिये बाहर निकल जाते हैं और जब उनका पुनः चिंतन किया जाता है तब वे वापस आ जाते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो अपनी ही रचना-ओंद्वारा सताये जाते हैं। वे रचनाएं मानों उन्हें अभिभूत करनेके लिये उनके पास आती हैं या उनपर आक्रमण करती हैं और वे उनसे छुटकारा पानेमें असमर्थ होते हैं। वे यह नहीं जानते कि एक बार अपने बनाये हुए आकारको कैसे बिगाड़ा जा सकता है। जब तुम कोई विशिष्ट प्रबल आकार बना लेते हो तब वह सदा ही तुम्हारे साथ जुड़ा रहता है; वह बार-बार वापस आता और तुम्हारे मस्तक-से टकराता है तथा शक्ति आहरण करता है। अंतमें वह तुम्हारी एक आवश्यकता बन जाता है। इस विषयमें रहस्योंका एक बड़ासा संसार ही है जिसका ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है। मनुष्य अज्ञानमें रहते हैं; उनमें जो शक्तियां निहित हैं उनके विषयमें वे सर्वथा अन-जान हैं या बहुत थोड़ा ही जानते हैं।

बौद्ध लोग, मेरा मतलब उन लोगोंसे है जो अधिक कट्टर परंपरा-

को मानते हैं, भगवान् या किसी शाश्वत सद्वस्तुमें विश्वास नहीं करते; वे देवताओंमें भी विश्वास नहीं करते, अर्थात् उन सत्ताओंको नहीं मानते जो सचमुच दिव्य हैं। परंतु वे अत्यंत अद्‌भुत रूपमें मन और मनकी शक्तिका प्रयोग करना जानते हैं; बौद्ध-मतकी साधना मनुष्य-को उसके मनोमय यंत्रका स्वामी बना देती है। एक बार बौद्धमतके अनुसार साधना करनेवाला एक व्यक्ति मेरे पास आया और बोला कि मैंने एक प्रयोग किया है। उसने अपने विचारके द्वारा एक सत्ताका निर्माण किया था, उसने महात्मा-जैसी एक सत्ताका सृजन किया था। वह यह जानता था और यह एक प्रमाणित तथ्य है कि कुछ दिनोंके बाद ये मानसिक रचनाएं व्यक्तिगत जीवन यापन करना आरंभ कर देती हैं, अपने जन्मदातासे स्वतंत्र होकर कार्य करने लगती हैं,— वे उसके साथ संबद्ध हो सकती हैं। फिर भी वे एकदम स्वतंत्र होती हैं, अर्थात् उनकी अपनी एक अलग इच्छा होती है। अब उस व्यक्तिको एक भीषण कठिनाईका सामना करना पड़ रहा था। उसने बताया : "आप शायद नहीं जानतीं कि मैंने अपने महात्माकी रचना इतनी अच्छी तरह की है कि वह मुझसे बिलकुल स्वतंत्र एक व्यक्ति बन गया है और निरंतर मुझे परेशान करनेके लिये आता है। वह आता है, एक-न-एक बातके लिये मुझे डांटता है, चाहे जिस किसी विषयपर मुझे सलाह देता है और पूर्ण रूपसे मेरे जीवनपर अधिकार जमाना चाहता है। मैं उससे छुटकारा पानेमें असमर्थ हूं। मेरे लिये यह काम अत्यंत कठिन हो गया है और मैं नहीं समझ पाता कि इस विषयमें मैं क्या करूं, मेरा महात्मा बहुत अधिक दुःखदायी बन गया है। वह मुझे चैनसे नहीं रहने देता। वह मेरे सभी कार्य-कलापोंमें हस्तक्षेप करता है, मुझे मेरा काम नहीं करने देता और फिर भी मैं जानता हूं कि वह मेरी ही सृष्टि है और मैं उसे नष्ट करनेमें असमर्थ हूं।" उसने मुझे समझाया कि कैसे-कैसे उसने उस चीजसे छुट्टी पानेकी कोशिशें कीं। मैंने उसे बतलाया कि उसके असफल होनेका कारण यह था कि उसे उसका ठीक नुस्खा ही नहीं

मालूम था। मैंने उसे ठीक प्रक्रिया बतला दी और दूसरे दिन सवेरे वह बहुत प्रसन्न और खिले हुए चेहरेके साथ आया और बोला, "वह विदा हो गया।" वह व्यक्ति संपर्कको नहीं काट पाता था; और फिर संपर्कको काटना ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि उस हालतमें वह सत्ता पृथक् और स्वतंत्र रूपसे बनी रह जाती है। आवश्यकता इस बातकी है कि जिस चीजको उत्पन्न किया गया हो उसे फिरसे अपने अंदर आत्मसात् कर लिया जाय, जो कुछ बाहर निकाला गया हो उसे निगल लिया जाय।

विचार और कल्पना

जब तुम किसी मनुष्य या वस्तुकी बात सोचते हो तो तुम तुरत उसके पास पहुंच जाते हो और अपने चिंतनके विषयके संपर्कमें आ जाते हो। परंतु यह संपर्क विचार-जगत्में ही प्राप्त होता है; उस समय तुम उस विषयकी प्राणिक या भौतिक स्थितिके बारेमें कुछ भी नहीं जानते। विचार मानसिक जगत्में केवल विचारके विषयमें ही सचेतन होता है; अपने विचारके द्वारा तुम किसी दूरस्थित विषयके मानसिक वातावरणके, जिस व्यक्तिकी बात तुम सोचते हो उसके विचारोंके विषयमें अवगत हो सकते हो, पर उससे अधिक कुछ नहीं; उसके प्राण या शरीरके संबंधमें तुम एकदम कुछ भी नहीं जान सकते।

यदि तुम प्राणके विषयमें कुछ जानना चाहो तो तुम्हें प्राणिक रूपमें उस वस्तुके पास जाना होगा; इसका मतलब है एक प्रकारसे शरीरसे बाहर निकल जाना जो शरीरको कम-से-कम तीन-चौथाई अंशमें समाधिमें छोड़ देता है। और यदि तुम चीजोंको भौतिक रूपमें देखना चाहो तो तुम्हें अपने अत्यंत भौतिक सूक्ष्म शरीरसे वहां जाना होगा; उस समय शरीर पूर्ण रूपसे एक प्रकारकी मूर्च्छाकी अवस्थामें पड़ा रहता है। ये चीजें तबतक नहीं की जा सकतीं जब-

तक कि कोई ऐसा व्यक्ति तुम्हारे पास न हो जिसे सच्चा ज्ञान हो और जो तुम्हारी रक्षा कर सकता हो।

परंतु मानसिक रूपसे बाहर निकल जाना बराबर ही होता रहता है। इससे तुम्हें मानसिक जगत्के साथ संपर्क प्राप्त होता रहता है। यदि तुम खूब सचेतन होओ, और जिस व्यक्तिको तुम अपने विचारके अंदर देखते हो वह भी खूब सचेतन हो तो उस समय वह व्यक्ति अपने मनमें जिन विचारों और रायोंको बनायेगा उन्हें तुम जान सकोगे, परंतु फिर भी अप्रत्यक्ष रूपमें ही जानोगे, प्रत्यक्ष रूपमें नहीं।

जब तुम किसी चीजकी कल्पना करते हो तब इसका मतलब है कि तुम एक मानसिक रचना तैयार करते हो जो तुम्हारी रचनाकी क्षमताके अनुसार सत्यके निकट भी हो सकती है या उससे एकदम बहुत दूर भी। कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनमें रचना करनेकी यह शक्ति इतनी अधिक मात्रामें होती है कि जो कुछ वे कल्पना करते हैं उसे चरितार्थ करनेमें भी समर्थ होते हैं। वे किसी चीजकी कल्पना करते हैं और उसको इतना सुगठित आकार प्रदान करते हैं कि उसे भौतिक रूप देनेमें भी सफल हो जाते हैं। वे वास्तवमें 'स्रष्टा' होते हैं। इस तरहके लोग बहुत नहीं होते, पर होते जरूर हैं।

तुम अपने विचारके अंदर किसी मृत व्यक्तिसे भी मिल सकते हो यदि वह मानसिक जगत्में अब भी बना हुआ हो; उसके मनके साथ तुम्हारा संपर्क हो सकता है और वहांके उसके जीवनके विषयमें तुम्हें मानसिक रूपसे एक प्रकारका दर्शन प्राप्त हो सकता है। परंतु वह अगर चैत्य जगत्में चला गया हो तो उसके विषयमें विचार करना ही पर्याप्त नहीं है; तुम्हें यह जानना होगा कि चैत्य जगत्में जाकर किस तरह उससे मिला जा सकता है।

मनकी अपनी निजी दृष्टि-शक्ति है; वह भौतिक आंखोंकी दृष्टि नहीं है; पर फिर भी है वह एक प्रकारकी दृष्टि ही, आकारोंके द्वारा देखना ही। वह कल्पना नहीं है, कल्पना तो एक बिलकुल अलग वृत्ति है। मान लो कि तुम अपने मनमें एक आदर्श व्यक्तिका

आकार तैयार करते हो और उसमें अपने आदर्शसंबंधी सभी धारणाओंको आरोपित करते हो। तुम कहते हो कि उसे ऐसा होना चाहिये, उसे वैसा होना चाहिये, उसके विचार ऐसे हों और उसका चरित्र वैसा हो; तुम छोटी-मोटी सभी बातोंको भर देते हो और उस पुरुषका निर्माण करते हैं। हां, तो यह काम कल्पनाका है। साहित्यिक मनुष्य, उपन्यास-लेखक बराबर ही इस प्रकारकी रचना करते हैं। निस्संदेह, कुछ लेखक जीवनमेंसे ही चीजोंको चुनते हैं, पर दूसरे लेखक ऐसे होते हैं जो चीजोंकी कल्पना करते हैं और उन्हें जीवनपर आरोपित करते हैं। वे अपने मस्तिष्कके भीतरसे एक चरित्र, परिस्थितियोंके एक समूह, घटनाओंकी एक समूची श्रृंखलाका निर्माण करते हैं। और अगर वे शक्तिशाली हों और उनमें पर्याप्त सृजनशक्ति हो तो यह बिलकुल संभव है कि उनके कल्पित आकार-प्रकारको मूर्तिमान् करनेवाली कोई पार्थिव मानव-सत्ता एक दिन वास्तवमें प्रकट हो जाय।

तुम किसी उच्च उद्देश्यके लिये अपनी कल्पना-शक्तिका उपयोग कर सकते हो। उसकी सहायतासे तुम अपना आंतर और बाह्य जीवन नये सिरेसे गढ़ सकते हो। यदि तुम्हें यह मालूम हो कि कल्पना-शक्तिका व्यवहार कैसे किया जाता है और तुममें शक्ति-सामर्थ्य हो तो तुम पूर्ण रूपसे अपने जीवनको गढ़ सकते हो। सच पूछा जाय तो संसारमें चीजोंको उत्पन्न करने और निर्मित करनेकी यह अत्यंत साधारण और प्रारंभिक पद्धति है। मेरी सर्वदा ही यह धारणा रही है कि यदि किसीमें कल्पना करनेकी क्षमता न हो तो वह किसी प्रकारकी प्रगति नहीं कर सकेगा। तुम्हारी कल्पना सदा-सर्वदा तुम्हारे जीवनसे आगे जाती है। जब तुम अपने विषयमें विचार करते हो तब तुम साधारणतया यह कल्पना करते हो कि तुम क्या होना पसंद करोगे — वह पहले आता है अर्थात् तुम्हें पूर्वदर्शन होता है, और तब तुम उसका अनुसरण करते हो; तुम कल्पना करना और उसे संसिद्ध करना, संसिद्ध करना और कल्पना करना जारी रखते

हो। कल्पना सिद्धिका द्वार खोल देती है। जिन लोगोंमें कल्पना-शक्ति नहीं है उनके लिये चलना बड़ा ही कठिन है। वे बस वही चीज देख पाते हैं जो ठीक उनकी नाकके सामने होती है, वे बस उसी चीजका अनुभव कर पाते हैं जो एक खास मुहूर्त्तमें वहां होती है। वे आगे नहीं बढ़ सकते, वे चलित वर्तमानसे अवरुद्ध होते हैं। कल्पना-शक्ति ही वह चीज है जो ऐसी अवस्थामें पूर्ण परिवर्तन ले आती है।

वैज्ञानिक पुरुषोंमें भी कल्पनाकी एक विशाल शक्ति होती है और होनी ही चाहिये; अन्यथा वे किसी चीजकी खोज ही नहीं कर सकते। कल्पना, सचमुच, वह शक्ति है जिसके द्वारा हम उपलब्ध वस्तुओंसे बाहर अनुपलब्ध वस्तुओंकी ओर अपने-आपको फैला देते हैं और उस फैलनेकी शक्तिके द्वारा ही उन्हें खींच लाते हैं। यह सच है कि एक अग्रगामी और दूसरी पश्चाद्गामी कल्पना भी होती है। कुछ ऐसे लोग होते हैं जो सभी संभवनीय विपत्तियोंकी बराबर कल्पना करते रहते हैं और उनमें उन विपत्तियोंको ले आनेकी भी शक्ति होती है। पर, जो हो, कल्पनाका अपना निजी शुभ उपयोग है। यह मानो एक ऐसे जगत्में मूंछवाले कीड़ोंकी तरह स्पर्शसे ज्ञान प्राप्त करनेवाली अपनी मूंछें भेजती है जो अभीतक ज्ञात न हुआ हो, और वे वहां जाकर कुछ चीजोंको पकड़ लेती हैं और उसे यहां खींच लाती हैं। स्वभावतः ही इसका मतलब होता है पृथ्वीके वातावरणमें कुछ जोड़ देना, ऐसी चीजें जोड़ देना जो अभिव्यक्तिकी ओर अग्रसर होती हैं। अतएव कल्पना एक ऐसी कार्यकारिणी शक्ति है जिसे हम शिक्षित और अनुशासित कर सकते हैं और अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहृत कर सकते हैं। यह उन प्रधान क्षमताओंमेंसे एक है जिन्हें हमें विकसित करना चाहिये और उपयोगमें लाने योग्य बनाना चाहिये।

यहांतक कि तुम भगवान्की कल्पना कर सकते हो और उनके साथ संपर्क प्राप्त कर सकते हो। निस्संदेह तुम उस वस्तुका संस्पर्श प्राप्त कर लेते हो जिसकी तुम कल्पना करते हो। क्या तुम जानते

हो कि तुम ऐसी किसी चीजकी कल्पना नहीं कर सकते जो कहीं भी न हो? वह चीज भले ही यहां पृथ्वीपर न मौजूद हो, पर वह अन्यत्र है और उसे होना ही चाहिये। जैसा कि मेरा कहना है ऐसी किसी वस्तुकी कल्पना करना असंभव है जो, कम-से-कम तत्त्वतः, इस विश्वके अंदर विद्यमान न हो। अन्यथा वह वस्तु एक विचारके रूपमें भी नहीं रह सकती।

विश्व विकसनशील है, यानी, यहां निरंतर अधिकाधिक वस्तुएं अभिव्यक्त होती रहती हैं। अब, कल्पना एक शक्ति है जिसकी सहायतासे तुम अभिव्यक्त वस्तुओंके क्षेत्रसे परे चले जाते हो; यदि तुमने इतनी अधिक प्रगति कर ली हो कि तुम अबतक अभिव्यक्त न होनेवाली वस्तुओंकी कल्पना कर सको तो तुम उन वस्तुओंको नीचे उतार लाने और उन्हें साकार सद्वस्तुका अंग बनानेमें सहायता कर सकते हो। स्वभावतः ही, विश्वमें क्या-क्या चीजें नहीं हैं इसकी कल्पना करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये तुम्हें यह जानना होगा कि अभिव्यक्त विश्वके परे कैसे जाया जाता है। और वहां ऐसी बहुत, बहुतसी चीजें हैं।

पार्थिव अभिव्यक्तिके अंदर किसी नयी चीजकी कल्पना करनेके लिये सबसे पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि इस अभिव्यक्तिके परे कैसे जाया जाय। कितने लाखों वर्षोंसे यह पृथ्वी है! कितनी नयी चीजोंका उत्पादन यहां हुआ है? अनगिनत, क्योंकि पृथ्वीपर कोई दो चीजें ठीक एक जैसी नहीं हैं, यद्यपि वे बहुत मिलती-जुलती हो सकती हैं। अपने मनके द्वारा पार्थिव वातावरणसे बाहर निकल जाना आसान काम नहीं है। परंतु तुम यदि वैसा करनेमें सफल हो गये तो तुम्हें विश्वजीवनसे भी बाहर चले जाना होगा। फिर, पृथ्वीपर उसके प्रादुर्भावके आरंभसे लेकर आजतक जो कुछ उत्पन्न हुआ है उस सबके साथ संस्पर्श प्राप्त करनेके लिये तथा उसके बाद उस विश्वके संस्पर्शमें आनेके लिये — जिसका यह पृथ्वी, अपने आरंभ-से लेकर आजकी अपनी रचनातक, केवल एक नन्हासा कण ही है

—वस इतना ही पर्याप्त नहीं है। तुम्हें और भी परे जाना होगा, विश्वके भी परे, परात्परमें, अनभिव्यक्तिमें चले जाना होगा। उसके बाद तुम किसी नयी चीजकी कल्पना करने और उसे अभिव्यक्तिके अंदर तथा पृथ्वीके ऊपर उतार लानेकी बात सोच सकते हो। यह बात नहीं कि ऐसा कोई कर ही नहीं सकता। परंतु ऐसा करना उतना आसान नहीं है।

काव्य और काव्य-प्रेरणा

मैंने कहा है: "काव्य मनका इंद्रिय-भोग है।" यह कैसे? क्योंकि काव्यका संबंध भावनाओंके रूपों और प्रतीकोंके साथ होता है और भावनाओंसे संबंधित रूप, प्रतीक, संवेदन, धारणाएं और हृदयावेग-ये सब चीजें इंद्रियभोग्य हैं अथवा, यदि तुम ऐसा कहना पसंद करो तो, ये वस्तुओंका वह पक्ष हैं जो इंद्रियभोग्य होता है। ऐसे सभी संबंध इंद्रियभोग ही होते हैं। और काव्यका संबंध मन और विचारकी इस भावनाके साथ ही होता है। काव्य भावनाओंके जगत्में उनके बाह्य आकारोंकी सहायतासे, उनके इर्दगिर्द लगे हुए इंद्रियानुभवों और हृदयावेगोंकी क्रीड़ाकी सहायतासे पहुंचता है। यह दर्शन या तत्त्वज्ञानकी जैसी कोई चीज नहीं है जो भावनाओंके अंदर ताकनेका प्रयास करते हैं। काव्य, इसके विपरीत, काव्य ही नहीं रह सकता जबतक कि वह भावनाको नहीं जगाता, अर्थात् जबतक वह भावनाको एक आकार, एक इंद्रियभोग्य आकार नहीं प्रदान करता। मैंने एक संक्षिप्त पद इस सत्यको प्रकट करनेके लिये प्रस्तुत किया है और उसे तीक्ष्ण बनानेके लिये प्रबल शब्दतकका चुनाव किया है। लोगोंको इंद्रियपरायण उस समय कहा जाता है जब वे एकदम भौतिक जीवनके इंद्रियानुभवमें ही व्यस्त रहते हैं, भौतिक जगत्के रूपों, रचनाओं और क्रियाओंमें ही संलग्न रहते हैं, जब वे अपनी इंद्रियोंके द्वारा जीवन यापन करते हैं और इंद्रियोंके विषयोंका उपभोग करते हैं। बस,

वही प्रवृत्ति जब बाहरी जीवन, भौतिक जगत्की ओर जानेके बदले मनके विषयोंके प्रति, भावनाओंके प्रति मुड़ जाती है तब वह काव्य-की सृष्टि करती है। काव्य एक जगत् है जो रूपके सौंदर्य-पक्षके अधीन रहता है। यह भावनाके सौंदर्यको, विचारके छंद-तालकी समस्वरताको प्रकट करता है और इन सबको एक ठोस आकार या प्रतीकात्मक रूप प्रदान करता है; यह प्रतीकोंकी, स्वरोंकी, शब्दोंकी क्रीड़ा बन जाता है। इस तरह जड़-तत्त्वकी इंद्रियपरायणताके स्थानमें हम मनकी इंद्रियपरायणता पाते हैं। मैंने यह शब्द निंदात्मक अर्थमें नहीं प्रयुक्त किया है और न नैतिक अर्थमें ही; यह तो महज एक वर्णन है।

दूसरे शब्दोंमें, मेरा मतलब यह नहीं है कि ऐसी दृष्टि, कवित्व-की दृष्टि आवश्यक रूपसे तुम्हें वस्तुओंके सत्यको देखनेसे रोकती है। यह केवल उस तरीकेका वर्णन है जिससे कवि कविके रूपमें वस्तुओं-को देखता है। निस्संदेह, यदि पढ़नेके लिये अच्छी कविताकी पुस्तक और दर्शनशास्त्रकी पुस्तकके बीच चुनाव करनेकी बात हो तो मैं व्यक्तिगत रूपसे कविताको ही पसंद करूंगी। क्योंकि वह कम नीरस होगी! काव्यकी मेरी परिभाषा, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, कोई निंदा नहीं है, वह केवल एक वर्णन है, वास्तविक वस्तुका वर्णन है, अर्थात् काव्य है सत्यके पास इंद्रियपरायणता या इंद्रियभोगके द्वारा पहुंचना। यह शायद अपनी बातको थोड़े-बहुत विरोधाभासके साथ कहना है; पर इसका उद्देश्य है विचारपर आघात करना, उसे उस सद्वस्तुको अनुभव करनेके लिये जागृत करना जो साधारणतया अभ्यास-गत, परंपरागत या "प्राचीन" चिंतन-पद्धतिके द्वारा अस्पष्ट-सी बना दी गयी है।

अगर अंतःप्रेरणासे तुम्हारा मतलब यह हो कि कवि जब कविता लिखता है तब विचार नहीं करता, अर्थात्, वह समस्त विचारके परे चला जाता है, अपने मनको शांत, नीरव और निश्चल बना देता है, अपने-आपको आंतरिक या उच्चतर क्षेत्रोंकी ओर खोले रखता है और

प्राय: सहज-स्वाभाविक रूपमें लिखता जाता है तो ऐसी बात शायद हजार वर्षोंमें एक बार ही घटित होती है। यह सामान्य घटना नहीं है। हां, योगीमें ऐसा करनेकी शक्ति होती है। परंतु साधारण रूपमें अंत:प्रेरित कविसे तुम्हारा मतलव जो कुछ होता है वह एकदम इससे भिन्न होता है। जिन लोगोंमें किसी प्रकारकी प्रतिभा होती है, जो लोग किन्हीं अन्य और उच्चतर क्षेत्रोंकी ओर कुछ खुले होते हैं उन्हें 'अंत:प्रेरित' कहा जाता है; जिन लोगोंने कोई आविष्कार किया है उन्हें भी उसी श्रेणीमें सम्मिलित किया जाता है। जब कभी तुम्हारा संपर्क सामान्य मानव-चेतनासे उच्चतर किसी लोककी किसी वस्तुके साथ हो जाता है तव तुम 'अंत:प्रेरित' वन जाते हो। और जव तुम पूर्ण रूपसे अत्यंत साधारण स्तरसे वंधे हुए नहीं होते तव तुम ऊपरसे 'प्रेरणाएं' प्राप्त करते ही हो। बस, यही वात कवि-के विषयमें भी घटित होती है। उसकी सृष्टिका मूल साधारण मनसे परे ऊपरके किसी लोकमें होता है; इसके लिये उसके मनको खाली और सूना होनेकी कोई आवश्यकता नहीं।

दिव्य जीवन

जो कुछ अभी हम नहीं हैं और अभी हम होना चाहते हैं, जो कुछ केवल हमारी की हुई प्रत्येक चीजसे ही नहीं बल्कि भविष्यमें संभवत: हम जो चीजें कर सकेंगे उनमेंसे भी प्रत्येक चीजसे अनंत-गुना अधिक ऊंचा प्रतीत होता है, जो कुछ हमारी वर्तमान क्षमता और परिकल्पनाके परे है, उस सवको हम सर्वदा "दिव्य" नामसे ही पुकारते हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि हम कुछ हजार वर्ष पहलेके कालम वापस चले जायं तो हम देखेंगे कि उन दिनों जव किसीने भगवान्‌की चर्चा की तो वह भगवान् एक ऐसी सत्ता थे जो वहुत कुछ एक 'अधिमानसिक' देवताके सदृश थी। इन अधिमानसिक देवताओंने

बहुत दीर्घकालतक पृथ्वीपर शासन किया है और यहां बहुतसी चीजें उत्पन्न की हैं। परंतु अब इन देवताओंसे संबंधित जीवन-यापनकी विधि उस विधिसे हमें बहुत अधिक निम्न कोटिकी प्रतीत होती है जिसकी कल्पना हम 'अतिमानसिक' के रूपमें करते हैं। फिर जिस 'अतिमानसिक' को हम इस समय भगवान् कहते हैं और जिसे हम पृथ्वीपर उतार लानेकी चेष्टा करते हैं उसका भी प्रभाव कुछ हजार वर्ष बाद हमपर वही पड़ेगा जो हमपर इस समय 'अधिमानसिक' का पड़ रहा है।

दूसरे शब्दोंमें, अभिव्यक्तिके अंदर, अपने आत्मप्राकटचके अंदर भगवान् क्रमवर्द्धमान होते हैं। ....अभिव्यक्तिके बाहर और उसके परे वह ऐसी चीज हैं जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते। परंतु जब वह सतत संभूतिकी इस स्थितिके अंदर अपने-आपको प्रकट करते हैं तब वह धीरे-धीरे अपने-आपको अभिव्यक्त करते हैं, मानो अपनी सत्ताकी सबसे अधिक सुंदर चीजोंको उन्होंने सबसे अंतमें प्रकट करनेके लिये बचा रखा हो।

जैसे-जैसे जगत् प्रगति करता है वैसे-वैसे भगवान् जो कुछ अपने अंदरसे जगत्में प्रकट करते हैं वह अधिकाधिक दिव्य बनता जाता है। श्रीअरविन्दने 'अतिमानसिक' शब्दका प्रयोग किया है जिसमें कि उनकी बात उन लोगोंके सामने स्पष्ट हो जाय जो विकसनशील बाह्य चेतनामें निवास करते हैं और जो उसी तरीकेको जानते हैं जिस तरीकेसे यह पार्थिव जगत् विकसित हुआ है; श्रीअरविन्द उन लोगोंको यह बतलाते हैं कि वह (अतिमानसिक) मनुष्यकी सृष्टिसे महत्तर कोई वस्तु है, उस मनुष्यकी सृष्टिसे जिसे वह बराबर ही मनोमय पुरुष कहा करते हैं। वह यह बतलानेके लिये उसे 'अतिमानसिक' नाम देते हैं कि वह मनसे परे है।

परंतु हम यह भी कह सकते हैं कि वह, उससे पहले जो कुछ अभिव्यक्त हो चुका है, उससे अधिक दिव्य कोई वस्तु है। क्योंकि वहां तो अनंतता विद्यमान है और उसकी कोई सीमा नहीं है। अतएव

वहां एक वर्द्धमान पूर्णता सदा ही वनी रहेगी। आज हमें जो कुछ अपूर्ण मालूम होता है वह पहले कभी पूर्ण वस्तु प्रतीत हुआ होगा जिसके लिये इतिहासके कुछ युगोंने आकांक्षा और अभीप्सा की होगी।

और इसका कोई कारण नहीं कि वह गति बंद हो जाय। अगर वह बंद हो जाय तो इसका अर्थ होगा सारी वस्तुओंका अंत — एक नवीन प्रलय।

पूर्णता और प्रगति

पूर्णता एक आपेक्षिक शब्द है। कोई वस्तु वर्तमान या भूतकालके मुकावले पूर्ण हो सकती है; भविष्यमें जो कुछ आनेवाला है उसके मुकावले वह पूर्ण नहीं हो सकती। सृष्टि एक शाश्वत गतिशीलता है, एक शाश्वत प्रगतिशीलता है। जब-जब पृथ्वीपर एक नयी चेतना प्रकट हुई तब-तब उस युगके मनुष्योंके लिये यह अत्यंत स्वाभाविक ही था कि वे यह समझें कि यही अंतिम सर्वश्रेष्ठ अनुभूति है, कम-से-कम एक अत्यंत महान् प्रगति है।

फिर भी हमें यह वात ध्यानमें रखनी चाहिये कि एक पशुके लिये, जैसे हाथी या कुत्तेके लिये, मानवीय क्षमताएं अद्भुत प्रतीत होती हैं; वे यह अनुभव करते हैं, कुत्ते तो अनुभव करते ही हैं कि मनुष्यमें करीव-करीब दिव्य शक्तियां ही मौजूद हैं। अतएव मनुष्य भी उस स्तरसे जहां कि वे हैं, परेकी चीजोंका संकेत प्राप्त करते हैं; यही कारण है कि हम पूर्ण संतुष्ट नहीं हैं; हमने जो सब चीजें प्राप्त की हैं उनके वावजूद भी हमें ऐसा लगता है कि अन्य कोई चीज है जो रह गयी है, निश्चय ही सत्य वस्तु खिसक गयी है, हम उसके चारों ओर घूमते हैं पर उसे छू नहीं पाते। इसका मतलव है कि मनुष्य और आगे प्रगति करनेके लिये तैयार हो गया है। यदि ऐसी बात न होती, यदि वह जो कुछ कर सकता है केवल उसीसे संतुष्ट रहता तो वह उसीको, शायद अधिकाधिक अच्छे रूपमें,

करनेका प्रयास करता, पर करता उसी पुरानी लीकपर। जो हो, पर बात ऐसी नहीं है; वह किसी अन्य चीजकी, किसी एकदम भिन्न वस्तुकी खोज करता है जो वास्तवमें सत्य है, जिसपर हम भरोसा कर सकते हैं, जो किसीके अवलंब लेनेपर भहरा नहीं जाती, जो एक स्थायी, शाश्वत वस्तु है, अक्षय आधार-शिला है। शाश्वतताकी, एक पूर्ण 'शिव' और एक पूर्ण 'सुंदर' की यह आवश्यकता ठीक उसी मुहूर्त्तमें जागृत होती है जब मनुष्य एक नयी चेतना ग्रहण करनेके लिये तैयार होता है।

अत्यंत दीर्घकालसे, संभवतः एकदम आरंभसे ही — मेरा मतलब मनुष्यके विकासके आरंभसे नहीं है, क्योंकि पहले ऐसे युग हो चुके हैं जब, सच्चे मनुष्यके प्रकट होनेसे पहले, मध्यवर्त्ती जीवोंपर सबसे पहले प्रयोग किया गया था और वे पशुके बहुत अधिक नजदीक थे; मेरा मतलब उस समयसे है जब पर्याप्त रूपमें विकसित मानव आकार प्रकट होना आरंभ हुआ था और जब वह ऊपरसे कोई चीज ग्रहण करनेके लिये तैयार हो गया था — ऐसे व्यक्ति सर्वदा ही हुए हैं और अभी भी हैं जो अपने अंदर शाश्वत और अखंड तत्त्वकी इस आवश्यकताको वहन करते हैं। और महज धीरे-धीरे ही, बहुत हौले-हौले, प्रकाश और अंधकारके चक्रोंमेंसे गुजरती हुई ही मानवजातिकी समष्टिगत चेतना-जैसी कोई चीज ऐसे एक उच्चतर जीवनकी आवश्यकताके प्रति जागृत होती है। और आज यह आवश्यकता स्पष्ट ही बहुत व्यापक रूपमें, मनुष्यजातिके सभी कोलाहलों और मूढ़ताओंको चीरकर प्रकट हुई प्रतीत होती है: यह बात सूचित करती है कि समय समीप आ गया है।

हां, बहुत लंबे अरसेसे, मनुष्योंको कहा गया था, "यह होगा, यह होगा", उन्हें वचन दिया गया था। हजार-हजार वर्ष पूर्व यह वादा किया गया था कि एक नयी चेतना, एक नया जगत्, भगवान्‌की कोई चीज पृथ्वीपर अभिव्यक्त होगी; यह बात सर्वदा ही भविष्यकी थी, युगोंके चक्रके अंदर कहीं होनेवाली थी। मनुष्यको ऐसा नहीं

लगता था, ऐसा नहीं महसूस होता था कि यह बात यहीं और अभी होने जा रही है।

मनुष्यजातिके एक बहुत बड़े भागको, सच पूछा जाय तो, इसके अधिकतम भागको, यह कल्पना करनेके लिये कि भविष्य कैसा होगा, बहुत अधिक प्रयास करनेकी आवश्यकता होती है। जो कुछ अभी है उसके साथ उसकी चेतना इतनी अधिक बंधी हुई है कि उसे यह कल्पना करनेमें भी कठिनाई होती है कि चीजें अन्य प्रकारकी हो सकती हैं। जो कुछ आगे होगा वह जब, कम-से-कम एक व्यक्ति-समूहकी चेतनाके लिये, एक अनिवार्य आवश्यकता बन जाता है तथा जो कुछ हो चुका है और है वह उस चेतनाको एक ऐसी हास्यास्पद वस्तुके रूपमें दिखायी देता है जो टिक नहीं सकती, तब और केवल तभी परिवर्तन घटित होनेका मुहूर्त्त आता है, उससे पहले नहीं।

फिर भी यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि आया यह चीज समष्टिगत रूपसे घटित होनेसे पहले व्यष्टिगत रूपमें घट सकती है या नहीं और घटेगी या नहीं। परंतु कोई भी व्यष्टिगत सिद्धि पूर्ण नहीं हो सकती या पूर्णतातक नहीं पहुंच सकती यदि और जबतक वह नये जगत्का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक सामूहिक चेतनाके साथ अपना मेल नहीं बैठा लेती। व्यष्टिगत और समष्टिगत चेतनाएं सदा ही एक-दूसरीपर निर्भर करती हैं और इतना अधिक निर्भर करती हैं कि व्यष्टिगत सिद्धि एक अननुकूल वातावरणमें सीमित और खंडित होनेके लिये बाध्य हो जाती है। पार्थिव जीवनको अपने समग्र रूपमें प्रगतिकी एक विशेष धाराका अनुसरण करना पड़ता है जिसमें कि उसके अंदर एक नवीन जगत् और एक नवीन चेतना प्रकट हो सके।

अतएव भावी सिद्धि, कम-से-कम आंशिक रूपमें, व्यक्तिगत रूपसे और समष्टिगत रूपसे, निश्चय ही तुमपर निर्भर करती है। क्या तुमने कभी यह समझनेकी चेष्टा की है कि नयी चेतना कैसी होगी, नयी जाति तथा नया जगत् कैसा दिखायी देगा?

यह स्पष्ट है कि पृथ्वीपर मनुष्यके आविर्भावने भौतिक अवस्था-

ओंको वदल दिया है। हम यह नहीं कह सकते कि इससे सवकी वहुत अधिक भलाई हुई है, क्योंकि इसके कारण वहुतसे स्थानोंमें वहुत अधिक दुःख-कष्ट आया है। फिर यह भी स्पष्ट है कि मनुष्य अपने साथ जिस जटिलताको जीवनमें ले आया है वह उसके लिये और दूसरोंके लिये सर्वदा उपयोगी नहीं सिद्ध हुई है। परंतु दूसरे दृष्टिकोणसे देखें तो उसके आगमनसे एक प्रगति हुई है, निम्नतर योनियोंमें एक सुनिश्चित उन्नति आयी है। मनुष्यने पशुओंके जीवन-के साथ, पेड़-पौदोंके जीवनके साथ, यहांतक कि धातुओं और खनिज पदार्थोंके जीवनके साथ भी अपने-आपको मिला दिया है और यह बात, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, उन सव जीवों और वस्तुओंके लिये वहुत आनंददायी नहीं रही है जिनके साथ मनुष्यने अपने-आपको व्यस्त रखा है। पर फिर भी इस हस्तक्षेपके कारण उनके जीवनकी अवस्थाएं परिवर्तित हुई हैं। उसी तरह यह संभव है कि अतिमान-सिक जीव, चाहे जैसा भी वह हो, जव आयेगा तव, पृथ्वीके जीवनमें वहुत कुछ परिवर्तन ले आयेगा। हम अपने हृदय और मनमें इस आशाका पोषण करते हैं कि जिन-जिन वुराइयोंसे पृथ्वी दुःख भोग रही है वे, यदि पूर्ण रूपसे दूर नहीं होंगी तो कम-से-कम वहुत अधिक मात्रामें, कम हो जायंगी और यहांके जीवनकी अवस्थाएं अधिक सुख-दायी और सुसमंजस हो जायंगी, कम-से-कम सबके लिये सामान्य रूप-से अच्छी हो जायंगी। ऐसा होना विलकुल संभव है। मनुष्यके अंदर मानसिक चेतनाने, जिसे कि उसने अभिव्यक्त किया, अपने स्व-भावकी शक्तिके द्वारा, अपनी निजी तुष्टिके लिये, अपने निजी विकासके लिये काम किया और इस वातका वहुत विचार नहीं किया कि उसके कार्योंका क्या परिणाम होगा। दूसरी ओर, अतिमानसिक चेतना उससे भिन्न रूपमें कार्य करेगी; कम-से-कम यही हमारी आशा है।

परंतु मानवजीवन छोटा है और स्वभावतः ही मनुष्यकी एक प्रवृत्ति है अपने आकारके अनुपातमें दूरियोंको कम करना। फिर

भी एक समय आयेगा जब यह चीज घटित होगी; एक ऐसा क्षण या एक ऐसी गतिविधि होगी जो अंतमें सद्वस्तुके अंदर उतरेगी। एक समय एक क्षण आया जब मनोमय जीव पृथ्वीपर प्रकट हुआ। आरंभ शायद मामूली था, बहुत अपूर्ण, अतिशय आंशिक था, पर आखिर-कार आरंभ हुआ था। अब वैसी ही बात क्यों नहीं घटित हो सकती ?

जो लोग आदिकालसे इस शुभ समाचारकी घोषणा करते आ रहे हैं वे निश्चय ही सबसे अधिक जानकार व्यक्ति होंगे। और म तुम्हें यह बतला दूं कि पृथ्वीके इतिहासके आरंभसे ही श्रीअरविन्द सर्वदा, एक-न-एक आकार और एक-न-एक नामसे, इन महान् पार्थिव रूपांतरोंकी अध्यक्षता करते आ रहे हैं। और इस बार यदि वह आये और उन्होंने यह कहा कि यह अंतिम रूपांतर है तो यह अवश्य ही अंतिम होगा। शायद वह जानते हैं।

ऐसी अवस्थामें, यदि इस बार यह अंतिम रूपांतर है तो, जो लोग तैयार हैं या अपने-आपको तैयार कर रहे हैं, वे स्वभावतः ही वे लोग होंगे जो इस नये पथपर सबसे पहले रवाना होंगे। मैं आशा करती हूं कि ऐसे लोग बहुतेरे होंगे। परंतु मेरा अपना दृष्टि-कोण यहां यह है: यदि इस बातकी केवल आधी भी संभावना हो तो भी इसके लिये कष्ट उठाना उचित है। मैं समझती हूं कि मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूं कि बहुतोंके जीवनमें एक क्षण ऐसा आता है जब कि अभी जीवन जैसा है, अभी मानव-चेतना जैसी है, वह इस रूपमें पूर्णतः असह्य हो जाती है, उससे केवल विरक्ति और घृणा ही उत्पन्न होती है; मनुष्य उसे अब अधिक बनाये रखना नहीं चाहता, वह अब अपना समस्त प्रयास, समस्त शक्ति, अपना समस्त जीवन और अंतरात्मा इसी एक संभावनाके लिये, आज अंतिम रूपमें दिये गये एकमात्र इसी सुअवसरके लिये झोंक सकता है जिसमें कि वह (जीवन-सरिताके) उस पार चला जाय। कितनी शांति मिलती है उस पथपर अपने पैर रख देनेपर जो तुम्हें उस पार पहुंचा देता

है! इस बातके लिये अपने सभी बोझोंको पीछे फेंक देने, समस्त भारोंसे अपने-आपको मुक्त कर देनेका कष्ट उठाना उचित ही है जिसमें कि तुम खूब अच्छी तरह छलांग भर सको। इसी रूपमें मैं इस बातको देखती हूं। यह सबसे महान् साहसिक कार्य है; यदि तुम्हारे अंदर साहसिक कार्य करनेकी सच्ची प्रवृत्ति जरा भी हो तो तुम अनुभव करोगे कि यह चीज अपना सर्वस्व न्योछावर कर देनेके योग्य है। परंतु जो लोग डरते और हिचकिचाते हैं, जो यह पूछते हैं कि "क्या मैं छायाके पीछे अपना सर्वस्व नहीं लुटा रहा हूं?"— मेरे मतके अनुसार यह एक अत्यंत मूर्खतापूर्ण बात है,— जो लोग उस वस्तुकी आशामें जो कल हो सकती या नहीं हो सकती है, अपना सर्वस्व खो देनेका खतरा उठानेके बजाय उनके पास जो कुछ है उससे लाभ उठाना अधिक पसंद करते हैं, ऐसे व्यक्ति, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, उस परिवर्तनको, यदि वह ठीक उनकी आंखोंके सामने ही घटित हो तो भी, नहीं देख सकेंगे। वे कहेंगे कि, "बस, ठीक है, हम कोई परवा नहीं करते, इसमें कुछ भी पछतानेकी बात नहीं है।" बिलकुल संभव है; पर कहना मुश्किल है, शायद उन्हें पछताना भी पड़े।

जो हो, सच्चाईसे मेरा मतलब यही है। अर्थात्, अगर तुम देखते हो कि नयी अनुभूति एकमात्र ऐसी वस्तु है जो सचमुच जीवन-में उतारने योग्य है, जो कुछ अभी है वह यदि असहनीय है, केवल अपने लिये ही नहीं, संभवतः उतना अपने लिये नहीं जितना कि समस्त संसारके लिये असहनीय है तो, यदि तुम तुच्छ और अहंकारपूर्ण न होओ तो, तुम उसकी आवश्यकताको अनुभव करते हो; तुम अनुभव करते हो कि वर्तमान जीवन बहुत दीर्घकालसे बना हुआ है और तुम इसके सिवा और कुछ नहीं कर सकते कि तुम स्वयं जो कुछ हो और जो कुछ कर सकते हो वह सब ले लो और अपने-आपको पूर्ण रूपसे — सिरके बल, पीछेकी ओर बिना देखे, क्या होगा या नहीं होगा इसका कोई विचार न कर — इस साहसिक कार्यमें झोंक दो। अतल

गह्वरके किनारे खड़े होकर कांपनेकी अपेक्षा उसमें कूद पड़ना कहीं अधिक अच्छा है।

कामनाका मूल-स्रोत

कामना कहांसे आती है? बुद्धने कहा था कि वह अज्ञानसे आती है। बात प्रायः ऐसी ही है। कामना हमारी सत्तामें रहनेवाली एक ऐसी चीज है जो यह कल्पना करती है कि उसे अपनी संतुष्टिके लिये अपनेसे भिन्न किसी दूसरी चीजकी आवश्यकता है। यह नितांत अज्ञान ही है, और इसका सबूत यह है कि सौमेंसे निन्यानबे प्रसंगोंमें जब मनुष्य अपनी काम्य वस्तुको पा जाता है तो वह फिर उसकी कोई परवा नहीं करता।

मैं समझती हूं कि अपनी एकदम मूल अवस्थामें यह अपनी वृद्धि या फैलावके लिये एक अंध आवश्यकता थी। सबसे नीची योनियोंमें हम देखते हैं कि प्रेम विस्तारित होने, फूल जाने, आत्मसात् करने, अपने-आपको दूसरे शरीरके साथ जोड़ देनेकी एक सहजप्रेरणात्मक और अदम्य आवश्यकतामें परिणत हो गया है। अपने अंदर ले लेने-की यह आवश्यकता ही है कामना। अतएव यदि तुम काफी दूरतक निश्चेतनाकी अंतिम गहराइयोंमें वापस चले जाओ तो तुम देखोगे कि कामनाका अंतिम स्रोत है प्रेम। यह प्रेमका अत्यंत अंधकारपूर्ण और निश्चेतन रूप है। यह, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, अपने-आपको बढ़ानेकी एक आवश्यकता है, अपनेसे बाहरकी एक वस्तुके लिये, उस-का आलिंगन करने, उसे निगल जाने, उसे अपना एक अंग बना लेने और इस तरह अधिक बड़ा होनेके लिये एक आकर्षण है। अब, मान लो कि तुम्हारे सामने कोई सुंदर, सुसमंजस, आकर्षक चीज रखी है; यदि तुम्हें सच्ची चेतना प्राप्त हो तो तुम उसका आनंद उपभोग करोगे और पूर्ण मात्रामें प्रसन्न होगे, और होगे महज उस चीजकी ओर ताककर, वहां जो सौंदर्य और सामंजस्य विद्यमान है

उसके साथ अपनी चेतनामें आंतर संपर्क प्राप्त करके। और बस वहीं मामला खत्म हो जाता है। तुम्हें प्रसन्नता हुई और वही सब कुछ है। ऐसी क्रिया कलाकारमें बहुत सामान्य रूपसे पायी जाती है। वह एक सुंदर व्यक्तिको देखता है, वह शरीरकी शोभा, उसकी चाल-ढालकी समस्वरता आदि देखकर हर्षित होता है। परंतु वह उससे आगे नहीं बढ़ता। जब वह कोई मनोहर वस्तु देखता है तब वह पूर्णतः प्रसन्न, संपूर्ण रूपमें संतुष्ट होता है।

परंतु, इसके विपरीत, एक साधारण चेतना, मेरा मतलब है, बहुत साधारण चेतना, जो साधारण वस्तुओंकी तरह चपटी होती है अर्थात् जिसमें जरा भी गहराई नहीं होती, वह जब किसी सुंदर वस्तुको देखती है, वह चाहे कोई स्थूल पदार्थ हो या कोई व्यक्ति, वह तुरत उसपर झपट पड़ती है और चिल्ला उठती है कि "मुझे यह मिलना ही चाहिये!" यह बड़े दुःखकी बात है, है न? और फिर, ऐसी चेतना-के द्वारा तुम सौंदर्यका उपभोग नहीं कर सकते, क्योंकि कामनाकी ताड़ना तुम्हारा पीछा करती रहेगी। इस तरह तुम सच्चा सुखोप-भोग तो खो बैठते हो और बदलेमें कोई चीज नहीं पाते। किसी चीजकी कामना करनेमें कोई सुख नहीं है। यह महज तुम्हें एक दुःखकी स्थितिमें डाल देता है।

बुद्धने भी कहा था कि कामनाकी तृप्तिकी अपेक्षा कामनाको जीतनेमें अधिक सुख है। प्रत्येक व्यक्ति यह परीक्षण कर सकता है और अनुभव ले सकता है। ऐसा करना बड़ा ही आनंददायी है।

जब तुम किसी कामनाका त्याग कर देते हो तब उसी क्षण तुम्हारे चैत्य पुरुषके साथ एक आंतरिक संपर्क स्थापित हो जाता है और यही कारण है कि मनुष्य कामनाकी चरितार्थताकी अपेक्षा उसके त्यागमें कहीं अधिक प्रसन्नता प्राप्त करता है। इसके अलावा, जब तुम अपनी कामनाको तृप्त करते हो तब सर्वदा ही उसके बाद कहीं-न-कहीं एक तिक्त स्वादका अनुभव होता है, एक प्रकारकी विरक्ति आती है। ऐसी कोई कामना नहीं जो तृप्त होनेपर ऐसी तिक्तता

तुम्हारे अंदर न छोड़ जाय, जैसे कि, जब तुम कोई बहुत मीठी चीज खाते हो तो तुम्हारा मुंह एक बुरे स्वादसे भर जाता है। कामनाका स्वभाव बस ऐसा ही है। इसे झाड़ फेंकनेकी, पर सच्चाईके साथ झाड़ फेंकनेकी कोशिश तुम्हें अवश्य करनी चाहिये। तुम्हें ऐसा करनेका बहाना करके उसे किसी कोनेमें बनाये नहीं रखना चाहिये। ऐसी हालतमें वह अवश्य तुम्हारे ऊपर विपत्तिका पहाड़ ढा देगी।

३

बुद्ध और शंकर

(१)

जीवनसे भागनेकी शिक्षा इस दृष्टिपर आधारित है कि जीवन माया-मरीचिका है। इस शिक्षाका आरंभ बुद्धसे हुआ था। बुद्धने कहा कि जीवन या अस्तित्व कामनाका फल है और इस विपत्तिसे छुटकारा पानेका महज एक ही पथ है, अर्थात् अस्तित्वसे बाहर निकल जाना। शंकरने उसी धाराको और आगे बढ़ाया। परंतु उन्होंने कहा, अस्तित्व महज कामनाका फल नहीं है, बल्कि यह एकदम एक भ्रम है और जबतक मनुष्य इस भ्रममें निवास करता है तबतक वह भगवान्‌को नहीं प्राप्त कर सकता। उनके लिये भगवान् — परात्पर भगवान् — का कोई अस्तित्व नहीं। मैं समझती हूं कि उनका विचार कुछ-कुछ ऐसा ही था। जो हो, बुद्धके लिये कोई ईश्वर नहीं था।

इन दोनोंका संपर्क किसी ऐसी चीजसे हुआ था जो सच्ची और यथार्थ है। बुद्धको निश्चय ही किसी ऐसी वस्तुके साथ आंतर संपर्क प्राप्त हुआ था जो, बाह्य जीवनके मुकाबले, उसे असत् प्रतीत हुई और उस अ-सत्‌के अंदर सत्‌का, अस्तित्वका सारा परिणाम विलीन हो गया। निस्संदेह ऐसी एक स्थिति है। और यह कहा जाता है कि यदि तुम उस स्थितिमें बीस दिनसे अधिक रहो तो तुम निश्चित रूपसे अपना शरीर खो दोगे। मैं समझती हूं कि बात ठीक है, यदि वह अवस्था अनन्य हो जाय। परंतु यह एक ऐसा अनुभव भी बन सकता है जो पीछे बना रहे, सचेतन रूपमें बना रहे और फिर भी एकदम अनन्य न हो। दूसरे शब्दोंमें, उस समय संसार और बाह्य चेतनाके साथ संपर्क बना रहता है और वह ऐसी एक चीजपर अव-

लंवित होता है जो उनसे स्वतंत्र और मुक्त होती है। यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें तुम सचमुच अपनी वाह्य चेतनामें महान् उन्नति कर सकते हो; क्योंकि उस समय तुम अपने-आपको प्रत्येक चीजसे अनासक्त रख सकते हो और बिना आसक्तिके, बिना पसंदगी-के तथा वाह्य जीवनमें अपने-आपको व्यक्त करनेवाली एक आंतरिक स्वतंत्रतामें कार्य कर सकते हो। एक बार जब तुम इस आंतरिक स्वतंत्र-ताको प्राप्त कर लेते हो, शाश्वत और अनंतके साथ यह सचेतन संपर्क स्थापित कर लेते हो, तब तुम्हें उस चेतनाको खोये बिना कर्म-की ओर मुड़ना चाहिये और कर्मकी ओर मुड़ी हुई समस्त चेतनापर उसे प्रभाव डालने देना चाहिये।

श्रीअरविन्द जो यह कहते हैं कि ऊपरसे शक्तिको उतारना चाहिये वह यही बात है। बस, उसी तरीकेसे संसारको परिवर्तित करनेकी संभावना है; क्योंकि उस पद्धतिमें तुम एक नयी शक्ति, एक नया क्षेत्र, एक नयी चेतना प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हो और तुम उसे वाह्य जगत्‌के संपर्कमें रखते हो। उसकी उपस्थिति और क्रिया, हम आशा करते हैं, बाहरी जगत्‌में अनिवार्य रूपसे परिवर्तन लायेगी एक सर्वांगीण रूपांतर लायेगी।

(२)

इसमें संदेह नहीं कि बुद्धको इस अनुभवका पहला अंश प्राप्त हुआ था; परंतु उन्होंने दूसरे अंशका कभी विचार नहीं किया, क्यों-कि यह स्वयं उन्हींके सिद्धांतके विरुद्ध था। उनका सिद्धांत था कि मनुष्यको संसारसे निकल भागना चाहिये। और यह स्पष्ट है कि भागनेका केवल एक ही रास्ता है और वह है मर जाना। और फिर भी, जैसा कि स्वयं उन्होंने भी इस बातको बहुत स्पष्ट रूपमें कहा था, मनुष्य मर सकता है और फिर भी जीवनसे आसक्त रह सकता है तथा बिना मुक्ति पाये पुनर्जन्मके चक्रमें बना रह सकता है।

सच पूछा जाय तो वार-बार पार्थिव जीवनमें आकर ही मनुष्य वर्द्धित होता है और एक दिन इस मुक्तिकी अवस्थाको प्राप्त होता है। बुद्धका आदर्श वह वस्तु थी जहां जगत्का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यह बात ऐसी है मानो उन्होंने भगवान्पर यह दोषारोपण किया हो कि उन्होंने जगत्की सृष्टि करके एक भूल ही की है और एकमात्र कर्तव्य है इसका नाश करके उस भूलको सुधार देना। स्वभावतः ही, जैसा कि संपूर्णतः बुद्धिसंगत और न्यायसंगत था, उन्होंने भगवान्के अस्तित्वको ही नहीं स्वीकार किया। पर, तव यह भूल की किसने ? कव और कैसे यह भूल हो गयी ? उन्होंने कभी इन प्रश्नोंका उत्तर नहीं दिया। उन्होंने बस इतना ही कहा कि संसारका आरंभ कामना-से हुआ था और कामनाका अंत होनेसे इसका भी अंत अवश्य हो जायगा।

वह यह कहनेके करीब पहुंच गये थे कि संसारका अस्तित्व विशुद्ध आंतरिक है, अर्थात् यह एक समष्टिगत भ्रम है, और यदि यह भ्रम दूर हो जाय तो संसारका अस्तित्व भी लोप पा जायेगा; परंतु यह इतनी दूरतक नहीं बढ़े। उनके बाद शंकरने ही इस धाराको ग्रहण किया और इस शिक्षाको इसकी पूर्णतातक पहुंचाया।

परंतु अत्यंत प्राचीन ज्ञानमें, उदाहरणार्थ, यदि कोई वैदिक ऋषियोंकी शिक्षातक पीछे जाय तो वह वहां संसारसे भागनेकी भावना नहीं पायेगा; उन्होंने पृथ्वीपर ही एक सिद्धि प्राप्त करनेकी चेष्टा की और उन्होंने एक ऐसे स्वर्णयुग (सत्ययुग) की भी कल्पना की जव कि वह सिद्धि प्राप्त हो जायेगी।

इस बातमें कोई संदेह नहीं कि बुद्धकी शिक्षाके समयसे ही भागनेकी भावना उत्पन्न हुई; और उसने धीरे-धीरे इस देशकी प्राण-शक्तिकी जड़ ही खोद डाली, क्योंकि इसका अर्थ था अपने-आपको जीवनसे ही दूर हटा लेनेका प्रयास। बाह्य सत्ता मिथ्या-माया बन गयी और मनुष्यका कर्तव्य हो गया उससे कोई संवंध न रखना। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि लोगोंने विश्व-शक्तिसे अपना

संबंध-विच्छेद कर डाला और इसलिये प्राण-शक्ति घटने लगी, तथा प्राणशक्तिके कम होनेके साथ-साथ पार्थिव सिद्धिकी समस्त संभावना भी कम हो गयी।

(३)

कुछ लोग कहते हैं कि बुद्ध एक अवतार थे, दूसरे कहते हैं कि नहीं थे।

भारतमें प्रचलित नामोंको यदि हम व्यवहृत करें तो मैं समझती हूं कि वे सब विष्णुके (भगवान्के उस रूपके जो रचता और रक्षण करता है) अवतार थे जो यह सिद्ध करनेके लिये आये कि भगवान् पृथ्वीपर रह सकते हैं; जब कि, प्रत्येक बार शिव (वह रूप जो रूपांतरित करने और नाश करनेके लिये कार्य करता है) उन व्यक्तियोंमें अवतरित हुए हैं जिन्होंने मायाके विरुद्ध युद्ध करनेकी तथा जो कुछ विद्यमान था उसका नाश करनेकी चेष्टा की है।

मेरे पास यह समझनेके कारण हैं कि बुद्धने शिव-शक्तिके कुछ अंशको अभिव्यक्त किया था। यह सब प्रकारके दुःख-संतापके लिये वही करुणा और वही बोध था और यह वही शक्ति थी जो नाश करती है, स्पष्ट ही रूपांतरित करनेके इरादेसे नाश करती है, पर निर्माणकी अपेक्षा नाश अधिक करती है।

निश्चय ही ऐसा नहीं प्रतीत होता कि बुद्धका कार्य बहुत निर्माणकारी था। मनुष्यको यह व्यावहारिक शिक्षा देनेकी आवश्यकता थी कि वह अहंशून्य बने। इस दृष्टिसे उनका कार्य उपयोगी सिद्ध हुआ।

परंतु यदि तुम उसे उसके मौलिक सिद्धांतके रूपमें लो तो कहना होगा कि पृथ्वी और पार्थिव जीवनको रूपांतरित करनेमें उसने बहुत अधिक सहायता नहीं की है। उसने पार्थिव जीवनके अंदर किसी उच्चतर चेतनाके अवतरणको प्रोत्साहित नहीं किया है; बल्कि उसने बहुत प्रबल रूपमें समस्त बाह्य अभिव्यक्तिसे चेतनाके, जिसे बुद्धने एकमात्र सत्य कहा, पृथक्करणको ही प्रोत्साहित किया है।

और भगवान्‌के अस्तित्व या अभिव्यक्तिका जहांतक संबंध है, जो लोग बुद्धमें विश्वास करते हैं उन्होंने अब उन्हें एक देवता बना दिया है। तुम्हें महज बौद्ध मंदिरोंमें और उनकी समस्त देवमंडलीकी ओर दृष्टि भर दौड़ानेकी जरूरत है और तुम समझ जाओगे कि मानव-स्वभाव जिसे आदरकी दृष्टिसे देखता है उसे देवता बना देनेकी प्रवृत्ति उसमें सर्वदा ही रही है।

तिथियोंका आध्यात्मिक अर्थ

क्या किसी विशेष तिथिका या क्रमागत कई तिथियोंका कोई विशेष आध्यात्मिक अर्थ होता है?

दिन-पत्र या पंचांग (Calendar) बनानेका तरीका एक प्रथा है। यदि किसी प्रथाको सर्वसामान्य बना दिया जाय जैसा कि आजकल करनेका प्रयास हो रहा है, तो वह एक बहुत शक्तिशाली रचना बन जा सकती है। परंतु बहुसंख्यक लोगोंके लिये अर्थपूर्ण बननेके लिये यह आवश्यक है कि पहले बहुसंख्यक लोग उसे स्वीकार करें। 'रचना' से मेरा मतलब है एक मूर्त्ति जिसमें एक ऐसी शक्ति संचारित हो जो उसे एक सजीव वस्तु बना दे, एक ऐसी मूर्त्ति जिसका व्यवहार एक प्रतीकके रूपमें किया जा सके। ऐसे लोग होते हैं जो मूर्तियोंका निर्माण कर सकते और उन्हें प्रतीकके रूपमें प्रयुक्त कर सकते हैं, पर यह सब केवल स्वयं उनके लिये ही होता है, जैसे कि स्वप्नोंके प्रतीक होते हैं। ये शुद्ध रूपमें आंतरिक होते हैं और वे वहींतक लागू होते हैं जहांतक कि उन व्यक्तियोंका अपना व्यक्तिगत संबंध होता है।

परंतु तुम्हारा दिन-पत्र (Calendar) यदि लगभग समूची मनुष्य-जातिके द्वारा गृहीत हो जाय तो उसका प्रतीक एक बहुत विशाल क्षेत्रमें काम करनेमें समर्थ हो जायगा। तुम उस मूर्तिके द्वारा बहु-संख्यक लोगोंपर कार्य कर सकते हो। चूंकि यह विशुद्ध रूपमें रूढ़ि-

गत है, मैं फिर दुहराती हूं, इसलिये यह केवल उसी हदतक फलदायी होता है जिस हदतक यह स्वीकार किया जाता है, यदि असंख्य लोगों-के बदले, जो आज यूरोपीय दिन-पत्रको मान रहे हैं, केवल तीन या चार ही लोग होते तो यह दिन-पत्र उन थोड़ेसे लोगोंके लिये ही अर्थ-पूर्ण होता। स्वयं इस चीजका कोई मूल्य नहीं, तुम इसका जो उप-योग करते हो बस उसीपर इसका मूल्य निर्भर करता है।

मैंने कहा है, रूढ़ियां प्रतीकके रूपमें उपयोगी होती हैं, तात्पर्य, वे ऐसे साधन हैं जो तुम्हें अधिक सूक्ष्म चीजके संस्पर्शमें ला देते हैं, जो कुछ स्थूल है उसे अधिक सूक्ष्म वस्तुओंके संपर्कमें ला देते हैं। यही उनका उपयोग है।

यहां हम उस भूलकी भी चर्चा करेंगे जिसे लोग ग्रह-नक्षत्रों और जन्मपत्रियोंके संबंधमें करते हैं। क्योंकि वह सब महज एक भाषा और एक प्रचलित पद्धति है। यदि तुम उस रूढ़िको स्वीकार करो तो तुम उसे किसी विशिष्ट कार्यके लिये व्यवहृत कर सकते हो। परंतु जितने लोग उसमें विश्वास करते हैं उनकी संख्याके अनुपातपर ही उसका मूल्य और महत्त्व निर्भर करता है। परंतु तुम यदि उसे सरल-सहज बना दो तो जितना ही अधिक तुम उसे वैसा बनाओगे उतना ही अधिक वह एक अंधविश्वास बनता जायगा। क्योंकि, आखिर अंधविश्वास है क्या? यह एक विशिष्ट वस्तुको सर्वसामान्य बनाकर उसका अपव्यवहार करना है।

मैं बराबर ही सीढ़ीके नीचेसे गुजरनेवाले एक व्यक्तिका उदाहरण देती हूं। एक आदमी सीढ़ीके सबसे ऊपरी डंडेपर काम कर रहा था और संयोगवश उसका यंत्र नीचे उस व्यक्तिपर गिर पड़ा और उससे उसका सिर फूट गया।

इस समस्त दुर्घटनाको देखनेवाले एक व्यक्तिने एक साधारण नियम बनाया कि किसी सीढ़ीके नीचेसे गुजरना बुरा शकुन है। हां, तो यह एक विशुद्ध और स्पष्ट अंधविश्वास है।

सच पूछा जाय तो हमारा अधिकांश ज्ञान इसी तरह उत्पन्न

होता है। इसी तरह अनुकूल अवस्थाओंके होनेपर किसी खास बीमारीवाले कुछ लोगोंको नीरोग करनेके लिये एक दवा ढूंढ़ निकाली जाती है। फिर यह घोषणा की जाती है कि यह दवा उस बीमारी-के लिये रामबाण औषध है। पर यह बात सच नहीं है। यदि वही दवा सौ मनुष्योंको दी जाय तो वह उनपर सौ अलग-अलग ढंगों-से असर करेगी; कभी-कभी तो प्रतिक्रियाएं एकदम उलटी भी होती हैं। किन्हीं दो मरीजोंपर उसका परिणाम एक जैसा नहीं होगा। अतएव स्वयं यह औषधका गुण नहीं है जो स्वस्थता लाता है। ओष-धियोंकी अचूक क्षमतापर विश्वास करना एक अंध-विश्वास ही है।

हम थोड़ा और आगे बढ़कर यह कह सकते हैं कि विज्ञान और अंध-विश्वासमें बहुत थोड़ा ही अंतर है! एकमात्र अंतर है अपनी बात प्रकट करनेके तरीकेमें। अगर तुम वैज्ञानिकोंकी तरह साव-धानीके साथ यह कहो: "ऐसा मालूम होता है कि यह ऐसा है, हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि चीजें ऐसी प्रतीत होती हैं" आदि-आदि, तो फिर यह अंध-विश्वास नहीं कहा जायगा। परंतु तुम यदि स्पष्ट रूपमें यह दावा करो कि "यह ऐसा ही है", तो तुम अंध-विश्वासमें जा गिरते हो।

रुपये-पैसेका मूल्य

जितना ही अधिक किसीको पैसा मिलता है उतना ही अधिक वह विपत्तिमें पड़ता है। वास्तवमें वह एक विपत्ति ही है, मेरे बच्चो!

रुपये-पैसेका होना एक महाविपत्ति है। पैसा तुम्हें मूढ़ बना देता है, वह तुम्हें लोभी, कुकर्मी बना देता है। यह संसारकी एक सबसे बड़ी आफत है। धन वह वस्तु है जिसे मनुष्यको तबतक नहीं रखना चाहिये जबतक कि वह कामनासे शून्य, आसक्तिसे रहित न हो जाय, जब किसीको पृथ्वीके समान विशाल चेतना प्राप्त हो जाय तभी

वह पृथ्वीका सारा धन अपने पास रख सकता है और यह सबके लिये अच्छा होगा। परंतु जबतक वैसी चेतना नहीं प्राप्त होती तब-तक जितना धन तुम्हारे पास है उतना ही अभिशाप भी तुम्हारे ऊपर है। यह बात मैं प्रत्येक व्यक्तिके मुंहपर कहूंगी, यहांतक कि उस मनुष्यके मुंहपर भी कहूंगी जो धनी होना एक गुण समझता है। यह एक आपत्ति है, यह शायद एक प्रकारका अपमान भी है, भागवत करुणा प्राप्त करनेकी स्थितिसे पतन है, एक प्रकारके भागवत असंतोष-की अभिव्यक्ति है।

धनी होना और उसके साथ ही ज्ञानवान्, बुद्धिमान और उदार होना बहुत कठिन है। 'उदार होना' इस बातपर जरा ध्यान दो, गरीबकी अपेक्षा धनीके लिये उदार बनना अनंतगुना अधिक कठिन है। अनेक देशोंमें अनेक लोगोंसे मेरी मुलाकात और जान-पहचान हुई है। अत्यंत उदार व्यक्ति सर्वदा ही अत्यंत गरीब थे। ज्योंही तुम्हारा पाकेट भर जाता है त्योंही मानो किसी रोगसे, धनके प्रति हीन कोटिकी आसक्तिसे तुम ग्रस्त हो जाते हो। मैं विश्वास दिलाती हूं यह एक अभिशाप ही है।

अतएव, जब किसीके पास धन हो तब उसके लिये सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वह उसे दे डाले। परंतु तुम्हें यह जानना चाहिये कि बिना सोचे-समझे उसे नहीं दे डालना चाहिये। तुम उस तरह धन मत दो जिस तरह कि एक दानी देता है; क्योंकि वह तरीका उसे केवल उसकी अपनी दयालुता, उदारता और महत्ताकी भावनासे भर देता है। तुम्हें यह कार्य सात्त्विक भावके साथ करना चाहिये, कहनेका आशय, देखो कि उसका सबसे उत्तम उपयोग होनेकी संभावना कहांपर है। इस तरह प्रत्येक व्यक्तिको अपनी निजी चेतनाके अंदर, जो उच्चतम चेतना उसे प्राप्त है उसमें, खोजना होगा कि जो धन उसके पास है उसका सर्वोत्तम संभाव्य उपयोग क्या है।

सच बात तो यह है कि धनका केवल उतना ही मूल्य होता है जितना कि वह व्यवहारमें रहता है। प्रत्येक व्यक्तिके लिये धनका

केवल तभी मूल्य है जब कि वह खर्च किया जाता है। मनुष्यने धनके बदले एक ऐसा पदार्थ चुननेका कष्ट उठाया है जो खराब नहीं होता, जैसे, सोना और चांदी, परंतु फिर भी नैतिक दृष्टिकोणसे, जब वह कार्यमें व्यवहृत नहीं होता तब वह सड़ता है। आजकल धातुकी जगह कागजका व्यवहार किया जाता है, पर तुम यदि अपने कागजोंके पुलिंदेको अपनी दराजमें रख दो तो कुछ दिनोंके बाद तुम देखोगे कि तुम्हारी सारी पूंजी घिस गयी है, खा ली गयी है। कीड़े-मकोड़े जाली बुनकर तुम्हें दे देंगे और उसे ग्रहण करना तुम्हारे बैंक अस्वीकार कर देंगे!

ऐसे लोग और ऐसे धर्म हैं जो कहते हैं कि ईश्वर जिन लोगोंको प्यार करते हैं उन्हें गरीब बना देते हैं। मैं नहीं जानती कि यह बात सच है या नहीं, परंतु एक बात जो सच है वह यह है कि जब कोई धनी होकर ही जन्म लेता है या जब कोई धनवान हो जाता है, हर हालतमें जब किसीके पास बहुत, अर्थात् भौतिक धन बहुत होता है तब निश्चय ही यह इस बातका चिह्न नहीं है कि भगवान्‌ने उसे अपनी करुणाके लिये चुना है; यदि वह भगवान्‌की ओर सीधे रास्तेसे, सच्चे मार्गसे चलना चाहता है तो उसे काफी मात्रामें प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता होती है।

धन-संपदा एक शक्ति है; मैं तुम्हें एक बार पहले बतला चुकी हूं कि यह प्रकृतिकी एक शक्ति है। इसे व्यवहारके चलते रहनेका एक साधन, एक गतिशील शक्ति होना चाहिये, ठीक जिस तरह कि बहनेवाला पानी एक गतिशील शक्ति होता है। यह एक ऐसी चीज है जो उत्पादन, संगठनमें सहायता करती है। यह व्यापारिक वस्तुओंके पूर्ण और मुक्त आवागमनके लिये एक सुविधाजनक साधन है — क्योंकि मूलतः यह महज एक साधन ही है। और यह शक्ति उन्हीं लोगोंके हाथोंमें रहनी चाहिये जो यह जानते हैं कि इसका सर्वोत्तम संभाव्य उपयोग कैसे किया जा सकता है, दूसरे शब्दोंमें, ऐसे लोगोंके हाथोंमें रहनी चाहिये, जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूं, जिन्होंने

अपने अंदरसे समस्त व्यक्तिगत कामना, समस्त आसक्तिको दूर कर दिया है, जो कुछ-कुछ इन दोनों चीजोंसे मुक्त हो चुके हैं। उसके साथ-साथ वह दूर-दृष्टि भी अवश्य जुड़ी होनी चाहिये जो पार्थिव जीवनकी आवश्यकताओंको समझनेके लिये पर्याप्त विस्तृत हो, वहां एक पूर्ण ज्ञान होना चाहिये जो उन आवश्यकताओंको संगठित करने और उन्हें पूरा करनेके लिये इस शक्तिका उपयोग करनेमें समर्थ हो।

इसके अतिरिक्त, यदि ऐसे लोगोंको एक उच्चतर आध्यात्मिक चेतना प्राप्त हो तो फिर वे पृथ्वीपर धीरे-धीरे एक ऐसी चीज निर्माण करनेमें इस शक्तिका व्यवहार कर सकते हैं जो भागवत शक्ति और भागवत करुणाको अभिव्यक्त करनेके योग्य होगी। ऐसा होनेपर ही यह रुपये-पैसेकी, धन-संपत्तिकी शक्ति, अर्थकी यह शक्ति, जैसा कि मैंने कहा है, अभिशाप होनेके बदले, सबके मंगलके लिये एक आशीर्वाद बन जायगी। कहावत है कि सबसे बुरे लोग ही सबसे अच्छे बनते हैं। मैं आशा करती हूं कि सबसे अच्छी चीज सबसे बुरी नहीं बनती, क्योंकि वह सचमुचमें दुःखदायी बात होगी।

महत्तम शक्ति जब बुरे रूपमें प्रयुक्त होती है तब वह एक बहुत बड़ी विपदा बन सकती है; वही शक्ति अच्छे रूपमें प्रयुक्त होनेपर मंगलकारी वस्तु बन सकती है।

सब कुछ इस बातपर निर्भर करता है कि किसी चीजका क्या उपयोग किया जाता है। प्रत्येक वस्तुका संसारमें एक स्थान है, एक कार्य है, एक सच्चा उपयोग है। परंतु इस जगत्‌में, जैसा कि यह है, बहुत थोड़ासी चीजें ही अपने सच्चे उद्देश्यके लिये काममें लायी जाती हैं, बहुत थोड़ीसी चीजें ही अपने समुचित स्थानमें हैं। संसार एक भयावह अस्तव्यस्तताकी अवस्थामें है। यही कारण है कि यहां ये सब विपत्तियां, ये सब दुःख-कष्ट हैं। यदि प्रत्येक चीज अपने निजी स्थानमें हो, सब कुछ एक सुसमंजस स्थितिमें हो तो समूचा संसार जिस संकट और दुःख-क्लेशकी स्थितिमें अभी है, उसमें पड़नेकी किसी आवश्यकताके बिना वह प्रगति कर सकता है।

१९६७

इस वर्ष प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंका परिचय :

(१) फरवरी मास — **श्रीमाताजीकी बातचीत (भाग २)** —कई महत्त्वपूर्ण विषयोंपर श्रीमांके प्रवचन।

(२) अप्रैल मास — **आंतरिक परिपूर्णता (सचित्र)** — साधकके पांच मुख्य गुणोंकी आवश्यकतापर श्रीमांका एक लेख तथा उन पांचों गुणोंका विवेचन।

(३) अगस्त मास — **योगसाधनाके प्रमुख तत्त्व** — श्रीअरविंदके पत्रोंसे संकलित योगसाधनासंबंधी कई आवश्यक तत्त्वोंका वर्णन।

(४) नवंबर मास — **भागवत मुहूर्त्त** — कई आध्यात्मिक विषयोंपर सुन्दर काव्यमय सूत्रोंके रूपमें श्रीअरविंदके लिखे हुए लेखोंका संग्रह।

हमारे अन्यान्य प्रकाशन :

१.	सफेद गुलाब	(श्रीमांके पत्र)	२.५०
२.	मृत्यु और उसपर विजय	(श्रीमां-श्रीअरविंद)	३.००
३.	मानव एकताका स्वरूप	(श्रीअरविंद)	२.५०
४.	अवतार	(श्रीअरविंद)	२.००
५.	श्रीमाताजीकी बातचीत (भाग १)		३.००
६.	जीवन-विज्ञान	(श्रीमां)	२.५०
७.	ध्यान और एकाग्रता	(श्रीमां-श्रीअरविंद)	३.००
८.	प्राण और उसका रूपांतर (भाग १)	(श्रीअरविंद)	२.५०
९.	प्राण और उसका रूपांतर (भाग २)	(श्रीअरविंद)	३.००
१०.	दिव्य जीवन, भाग १ (अदितिके १४ अंक)		२१.००
११.	दिव्य जीवन (भाग २ खंड १) (सजिल्द)		१६.००

पत्रिकाओंकी फाइलें :

१	'अदिति'की सजिल्द फाइलें	१०.०० प्रति वर्ष
२	'अर्चना'के सात अंकोंका सेट	२७.०० प्रति सेट

मिलनेका पता :

अदिति कार्यालय, पांडिचेरी–२

39

इस बोधका होना ही सबसे उत्तम मनो-भाव है कि तुम्हारे अस्तित्वका एकमात्र कारण, तुम्हारा एकमात्र उद्देश्य है भगवान्‌के प्रति सर्वांगीण रूपसे परिपूर्ण आत्मदान कर देना, इस हदतक कर देना कि तुम अपने और भगवान्‌के बीच विभेद करनेमें असमर्थ हो जाओ, तुम पूर्णतः, अखंडतः भगवान् ही बन जाओ और तुम दोनोंके बीच किसी भी प्रकार-की कोई व्यक्तिगत प्रतिक्रिया न घुसने पाये। और केवल यही वह मनोभाव है जिसके सहारे तुम प्रत्येक चीजसे, यहांतक कि स्वयं अपने-आपसे भी—क्योंकि सभी खतरोंमें बड़ेसे बड़ा खतरा वह होता है जो स्वयं अपने आत्मा-से, अपने अहंकारपूर्ण आत्मासे आता है—जीवनमें सुरक्षित रहते हुए निर्विघ्न उन्नति कर सकते हो।

—श्रीमाताजी

श्री [illegible] संघ

[illegible]

[illegible] - [illegible]

अदिति पुस्तक-माला — पुष्प ९

मूल्य रु. ३.००